आगे कौन
हवाल ?
डॉ. गोविन्द शेनाय

5927

326

डॉ० गोविन्दशेनाय
की
तेईस व्यंग-कहानियाँ

3-00

आगे कौन हवाल ?

डॉ० गोविन्दशेनाय

केरल हिन्दी साहित्यमण्डल प्रकाशन

आगे कौन हवाल ?
[हिन्दी व्यंग-कहानियाँ]

प्रकाशक:
केरल हिन्दी साहित्यमण्डल कोचिन–२५, केरल

मुद्रक:
हिन्दी प्रचार प्रेस

मूल्य: तीन रुपये

प्रथम संस्करण

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रतियाँ: १०००

जुलाई १९७१

केरल हिन्दी साहित्यमण्डल की स्थापना हिन्दी-भाषा एवं साहित्यके प्रचार-प्रसारके हेतु की गई है। इच्छा है, यह संस्था केरलके हिन्दी साहित्यक-बन्धुओंके सृजनात्मक-व्यक्तित्व को अभिव्यक्तिका माध्यम रहे। मण्डलके सदस्योंकी रचनाओंके प्रकाशनकी योजनाके अन्तर्गत पुस्तक-मालाका प्रथमपुष्प "आगे कौन हवाल ?"—आप सुधी पाठकोंके सामने सहर्ष प्रस्तुत किया जाता है।

सुधी हिन्दी प्रेमी पाठक-बन्धुओंसे मण्डल का सविनय निवेदन है कि हमारे इस सत्प्रयास की प्रगति आपके सहयोग और सद्भावनापर निर्भर है।

—केरल हिन्दी साहित्यमण्डल

दो शब्द

हास्य व्यक्तिको करुणामें घुलकर मिटनेसे बचाता है; वह उसका रक्षा-कवच है। सुखकी खोजमें व्यस्त व्यक्तिके हाथ दुःख ही लगता है और इसीके निर्मम विधानमें वह खाहा हो जाता है। वह स्वयं करुणाका पात्र है और संसार उसीसे करुणाकी अपेक्षा रखता है। विवशताजन्य इस विकट स्थितिमें वह कहाँ तक संसारके प्रति करुणार्द्र हो सकता है, इसकी सीमा-रेखा उसे स्वयं निर्धारित करनी पडती है और यह प्रक्रिया उसमें अपने आप होती है। यह आत्म-रक्षा (Self preservation) का कवच है। जीवन दुःख-पूर्ण है और सुख अस्थिर है। जन्म और मृत्युके अन्तरालकी अनन्तकालके आगे गणना ही नहीं है। इस स्थितिकी आनन्दपूर्ण स्वीकृतिमें ही उसका मंगल है। जीवनके प्रति एक गंभीर, व्यापक और तटस्थ दृष्टिकोण उसे ग्रहण करना पडता है ताकि वह टूटकर बिखर न जाय। हास्य इसी दृष्टिकोणकी उपज है। "आगे कौन हवाल ?" में कहीं भी यदि उक्त दृष्टिकोणका तनिक भी आभास मिल जाय तो लेखक अपने श्रमको सार्थक समझेगा। दुनियादारीमें समर्थ मेरे कई मित्रोंने मुझे नेक रास्तेपर लाने केलिए ममतापूर्ण शब्दोंमें उपदेश दिया है कि मैं हास्य कहानियाँ लिखनेकी अपेक्षा विद्यार्थियों केलिए उपयोगी कुंजियाँ लिखूँ ताकि एक पन्थ दो काजवाली बात चरितार्थ हो जाय। जिन्दगी यदि छोटी नहीं होती तो मैं उनकी बात अवश्य मान लेता।

समय समयपर लिखी ये कहानियाँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित हो चुकी हैं। इनके पात्र, घटनाएँ, प्रसंग सभी काल्पनिक हैं। पुस्तकका प्रकाशन 'केरल हिन्दी साहित्यमण्डल'की ओरसे हो रहा है। मैं मण्डलका ऋणी हूँ। कहानियोंके संकलन-संपादनसे लेकर उन्हें पुस्तकके रूपमें प्रकाशित करने तकके कार्यमें मित्रवर श्रीमान टी० एन० विश्वंभरनजी एम० ए० ने सहयोग दिया है जो यदि प्राप्त नहीं होता तो ये कहानियाँ इस रूपमें शायद ही प्रकाशित होतीं। उनको धन्यवाद किन शब्दोंमें दूँ, नहीं जानता।

कोचिन
1-6-'71.

—डॉ० गोविन्दशेनाय

"जब जीवनके कगारोंकी हरियाली सूख गई हो,
सूरजके चेहरेपर ग्रहणकी छाया गहरी होती जा रही हो,
परखे हुए मित्र और आत्मीयजन
काँटोंके मार्गपर मुझे अकेले छोडकर चल दिए हों,

तो·····, हे मेरे प्रभु!
मेरे साथ इतना अनुग्रह करना,
मेरे होठोंपर हास्यकी एक उजली रेखा खिंच जाय।"

—योन नागोची

विषय-क्रम

1.	काठ	...	1
2.	उभरी कीलें	...	4
3.	स्थानान्तरण	...	6
4.	स्थानान्तरणके पूर्व	...	9
5.	शेष सब मिथ्या है, माया है	...	12
6.	अमर संवेदना	...	15
7.	अविवाहित अफसर अब्दुल्ला साहब	...	17
8.	एस्सर	...	19
9.	बाबू शिरोमणि	...	21
10	मणकीबाई और द्रौपदीका चीर	...	24
11.	'मिस्टिक'साहब और चिश्वशांति	...	26
12	मणकू साहब और भारतीय भैंस	...	28
13	घर आपका ही है	...	31
14.	रायल रेस्त्रां	...	34
15.	गरम चाय	...	36
16	सोशलिस्ट साहब ज़िंदाबाद!	...	38
17.	आगे कौन हवाल ?	...	41
18	दुनियादारीका मर्म	...	44
19.	पण्डितजी अंडे नहीं खाते	...	47
20.	केशसंवर्धिनी गोलियाँ	...	49
21.	मंगल कामना	...	52
22.	व्यस्तवर्तमान	...	58
23.	आचार्य	...	75

काठ

कुरसी सिसकती-सी पीछेकी ओर सरक गई और शास्त्रीजी एकदम बाहर निकल गए मानों ममता निश्शेष हो चुकी हो। पैंतीस वर्षोंकी संचित ममता काठमें घुल कर स्वयं काठ हो गई थी और केवल शास्त्रीजीको इसका पता था। पील-पांवसे ग्रस्त मोटे पायों की वह खुरदरी कुरसी अब क्या कभी भी आकर्षक नहीं रही होगी और विवशता के कारण ही वह समानधर्मा शास्त्रीजीकी ओर खिंच गई होगी। कुरूपताने कवचकी भांति उसकी रक्षा की है और उसकी एक-निष्ठ साधनाको सुगम बनाया है। दार्शनिक शास्त्रीजीके दीर्घ अध्यापक-जीवनकी वह सतत संगिनी रही है और राग-विरागजन्य अनेक प्रसंगोंमें उसने उन्हें संभाला है; अन्यथा वे टूट कर बिखर

गए होते । दुरूह दार्शनिकतामें उलझ कर जब वे छटपटा उठते थे तो वह आशंकित हो उठती थी, लगता था, वह स्वयं संतुलन खो बैठेगी । विद्यार्थियोंकी बिदाका प्रसंग इतना करुण होता था कि शास्त्रीजीकी ही नहीं उसकी भी संपूर्ण दार्शनिकता आंसुओंमें घुलकर बह जाती थी। जहाँ शास्त्रीजी भावविभोर हो उनके उज्वल भविष्यकी कामना करते थे वहाँ वह चिंतित हो उठती थी कि नोनतेल रोटी लकडीकी दुनियामें ये दार्शनिक बच्चे कहीं जल न जायें । अठारह वर्ष पूर्व अपनी अर्द्धांगिनी को चिताकी भेंट करके जब वे वहीं पालथी मार कर बैठ गए थे तो लोगोंने समझा था कि वे पागल हो गए हैं और उसने दम साध कर कुलदेवतासे उनकी रक्षा केलिए प्रार्थना की थी। उसका विश्वास है, देवता ने ही उसे बचाया है । निस्सन्तान शास्त्रीजीके विधुर जीवनको रसस्निग्ध बनाने केलिए मित्रों और पडोसियोंने बड़ी दौडधूप की थी और शास्त्रीजीने उनके प्रति कृतज्ञ होनेकी अपेक्षा, उन्हें फटकारा था । उसे अब भी वे दिन याद हैं जब उन अभिभावकोंने उसके विरागका कारण उसकी ममता बताकर व्यर्थ ही उसे बदनाम किया था। इस दीर्घकालमें उसने उन्हें निकटतासे देखा है, परखा है और समझा है और इतनी अधिक मात्रामें समझा है कि उसका विश्वास है कि अब समझनेको कुछ भी नहीं रह गया है । शास्त्रीजीके इस अंतिम आचरणने उस विश्वासको धक्का देकर धराशायी

कर दिया है। उसकी समझमें नहीं आ रहा है, ऐसा हुआ क्यों? क्या वे पुनः बौखला गए हैं? उसी दिन शामको चपरासियोंकी कृपासे उसे मालूम हो जाता है कि अर्थके अपव्ययको रोकने केलिए सरकारने दर्शनका अध्यापन बंद करनेका आदेश निकाला है तथा शास्त्रीजी का परिवार नियोजन विभागमें स्थानान्तरण हुआ है। शास्त्रीजीने क्रुद्ध होकर इस्तीफा दिया है और लिखा है कि उस काममें वे अनाड़ी हैं, उनके परिवारका नियोजन भगवानने किया है। दूसरे दिन प्रातःकाल चपरासीने देखा, शास्त्रीजीके अध्यापक-जीवनकी सतत-संगिनी पीलपांवसे ग्रस्त पायोंको समेटकर औंधेमुँह धरतीपर पडी हुई है, मानों सचमुच जड हो गई हो। ○

उभरी कीलें

दर्शन विभागके द्वारपर एक ओर दीवारसे सटकर स्थित महोगनी की वह तिपाई अपनी बेडौलताके कारण विराग पैदा करती है। उसके पायोंको लोहेकी कीलोंसे फर्शमें गाड दिया गया है। संभवतः स्वेच्छाचारिता पर अनुशासनका यह अंकुश हो। एक जमानेमें अभिभावक उसके भी रहे होंगे और ममता उसेभी प्राप्त हुई होगी। घावोंसे भरे उसके पायोंमें यत्र तत्र जंगलगी उभरी कीलें दिखाई देती हैं; मानों आदिम बर्बरताकी अंतिम निशानियाँ हों। अर्थके अपव्ययको रोकनेकेलिए अधिकारियोंने अनुपयोगी शास्त्रोंका अध्यापन बंद किया है और दर्शन उनमें एक है। वृद्ध विधुर और निस्संतान दर्शनाचार्यका परिवार-नियोजन-विभागमें स्थानान्तरण हुआ है जिसपर आचार्यजीने इस्तीफा दिया है और लिखा है कि उक्त काममें वे अनाड़ी हैं; उनके परिवारका नियोजन भगवानने किया है। अलमारियाँ अन्य उपयोगी

प्रसाधनोंके साथ ले जाई जा चुकी हैं और फर्शपर बिखरी पुस्तकोंके बीचमें दर्शनाचार्यकी खुरदरी कुरसी औंधेमुँह पडी हुई है। द्वार खुले पडे हैं, निश्चित, निस्पन्द! उपयोगी जगह खाली न होनेके कारण चपरासीका स्थानान्तरण अभी नहीं हुआ है। वह आशंकित है, कहीं वह भी दर्शनकी भांति अनुपयोगी न समझा जाय। वह अब कभी-कभी विभागमें आता है और ममतापूर्ण दृष्टिसे वह सब देखता है, विशेषतः उस तिपाईको जिसपर उसकी बत्तीस वर्षोंकी नौकरी अवलंबित रही है। दर्शनके अत्यन्त निकट रहनेके कारण उसकी साधुतासे वह भी थोडी बहुत मात्रामें प्रभावित हुआ है। हां, दुनियादारीमें वह सचमुच आचार्यजीसे आगे है! किंतु दुनियाकी उल्टी धारणाको वह कैसे बदल दे! उसके चिंतनपर यही विवशता हावी है। दर्शन-विभागका बचामाल अधिकारियोंकी दृष्टिमें रद्दी होनेके कारण उसे जला डालने का आदेश दिया गया है। उस केलिए अंतिम तारीख भी निश्चित की गई है। निश्चित दिन अपराह्नमें बड़े बाबू तीन नौकरों और आवश्यक प्रसाधनों के साथ दर्शन विभागमें आजाते हैं जहाँ द्वारपर एक ओर दीवारसे सटकर स्थित तिपाईपर चपरासी बैठा हुआ दिखाई देता है; पीठ दीवारसे टिकी हुई-सिर कंधों पर लुढका हुआ-आंखें शून्यसी फ़ैली हुई और अकडे हाथों की उँगलियाँ तिपाईके पायोंकी जंग-लगी उभरी कीलोंमें अटकी हुई। वह स्वयं रद्द हुआ है। ○

स्थानान्तरण

अफसर साहबके वृद्ध महाराजकी तरुण अर्द्धांगिनी से बाज़ारमें मुहब्बतकी बात साइकिल मरम्मतवाले अब्दूने की थी; अब्दूके अवैतनिक सहयोगी मुत्तूमास्टर केवल हंस दिए थे। परन्तु दुष्परिणाम इसका यह हुआ कि मास्टर साहबका स्थानान्तरण हुआ, अठावन मील दूर देहाती स्कूलमें। साइकिल मरम्मतवालेपर शिक्षा विभागके डयरेक्टरका क्या अधिकार! अपने व्यवसायपर हुए इस गहरे आघातसे अब्दू इतना अधिक विह्वल हो उठा कि रुग्ण साइकिलोंके बीचमें धम्मसे बैठकर आहें भरने लगा। सच्चे प्रेममें सुख कहाँ? मास्टर साहब अपने अवकाशके समयमें अब्दूकी मदद किया करते थे और साइकिल मरम्मतमें इतने अधिक निपुण थे कि तीन आदमियोंके दिनभरका काम अकेले कर लेते थे और प्रतिदानके रूपमें उन्हें मिलता था दो पहरके वक्त खाना और एक दर्जन भैरव छाप बीडियां। वृद्धपिता, रुग्ण पत्नी, जुडवां

बच्चे-इनके प्रति अनासक्त होना मास्टर साहब केलिए आसान नहीं था। अतः वे अफसरसे मिले, प्रणाम किया, सिसकियां भरीं और भगवानका स्मरण करके अपना दुखडा सुनाया और अपनेको निरपराध साबित करनेका श्रम किया। परन्तु डयरेक्टर साहब टससे मस नहीं हुए; अपराधका पूरा पता उन्हें पहले ही लग चुका था। उधर अब्दूने स्थानीय पापड मज़दूर संघके मन्त्रीके नेतृत्वमें दौड धूप की और इनकलाबी नोटिसें छपवाकर लोगों को मुफ्तमें बांट दीं। परन्तु फायदा कुछ भी नहीं हुआ। मास्टर साहबने काठके एक पुराने किंतु मज़बूत सन्दूकमें अध्यापनकी सामग्री, कपडे, तकियेका काम देनेवाली तख्ती और चाकू हथौडा सरीखे संकट कालीनऔजार संभाल कर रखे। उन्होंने मन ही मन उन सभी महात्माओंको प्रणाम किया जिन्होंने उन्हें पैसे उधार दिए थे, पत्नी से मुहब्बत की अपेक्षा राशनके संबन्धमें संक्षेपमें बातें कीं और संदूक उठाकर सिरपर रखा और अकड कर कुछ इस ढंगसे चले मानों अफसरके स्थानांतरणका आर्डर अभी निकाल चुके हों। दूसरे दिन ब्रह्ममुहूर्तके पहले ही मास्टर साहब स्कूल पहुँचे। देखा, बरामदेमें लुँगीमें लिपटा एक अर्द्धनग्न व्यक्ति देहाती दिएके अस्वस्थ आलोकमें अंधाधुँध मन्त्रोच्चारण कर रहा है। उसके चारों ओर पुष्प, पत्र, दूर्वादल, अक्षत, सिन्दूर आदि बिखरे पडे हैं। मास्टर साहब इतने अधिक भयभीत हो

गए कि उन्हें भगवान जल्दी ही याद आ गए। सन्दूक वहीं फेंक कर वे भागने ही वाले थे कि उस व्यक्तिने उसे इशारेसे बुलाया और मानवोचित स्वाभाविक भाषामें पूछताछ की। मास्टर साहबने अपनी करुण कथाका यथातथ्य वर्णन किया और कहा कि वे हेडमास्टरसे मिलना चाहते हैं। इसपर वह इतने ज़ोरसे अट्टहास कर उठा कि मास्टर साहब पुनः भयभीत हो गए। उस व्यक्तिने कहा—"हेडमास्टर मैं ही हूँ। साइकिल-मरम्मतसे यहाँ काम नहीं चलेगा। झाड-फूँक, जन्त्र-मन्त्र ज्योतिष आदिका अभ्यास करो।" मास्टर साहबने स्वीकार किया; अब वे किसी भी काम केलिए तैयार थे। ○

स्थानान्तरणके पूर्व

सडकके नाजुक मोडकी बगलमें दुबक कर बैठा वह सरकारी प्रैमरी स्कूल रुग्ण साधु-सा दीन दिखाई देता है। काठके जर्जर डोलते-से खंभोंसे फूसकी छाजन ऐसी चिपटी हुई है मानों ममता अभी निश्शेष नहीं हुई हो। छाजनके छिद्रोंसे होकर सूरजकी किरणें अन्दर प्रविष्ट हो मिट्टीमें मिल जाती हैं। चारों ओर बांसकी फट्टियोंसे बनी टट्टियाँ लगी हुई हैं जिनमें से हवा और धूलका निर्द्वंद्व आवागमन होता है। स्कूलके ठीक मध्यभागमें हेडमास्टर साहबका खुला दफ्तर है जिसमें रखा काठका मोटा बकस मेज़, भंडारघर और खाटका काम देता है। अन्य दोनों भागोंमें विद्यादान होता है और रोदन-ताडनकी ध्वनिसे वातावरण मुखरित हो उठता है। आंधी-पानीकी जरा-सी भी आशंका होनेपर हेडमास्टर साहब विद्यार्थियोंको छुट्ठी देते हैं और आप मित्रवर वैद्यराज विश्वंभरजीके यहाँ चल देते हैं। ग्रामवृद्धोंका कथन है कि स्कूल नये युगकी सनक है। स्त्रियाँ इस कथनका

विरोध करती हैं, विशेषतः वे स्त्रियाँ जो अपराह्नमें आराम करना चाहती हैं । हेडमास्टरसाहब झाडफूँक और मंत्रविद्यामें निपुण हैं और अपने अवकाशके समयमें परहितार्थ उनका प्रयोग करते हैं जिससे उनकी ख्याति बढती है और थोडी बहुत मात्रामें आय भी । यह कार्यकलाप प्रायः स्कूलमें ही होता है और सूर्यास्तके पश्चात् ही उसका प्रारंभ होता है । स्कूलके प्रति उनमें प्रगाढ ममता होनेके कारण उन्होंने उसके जीर्णोद्धार केलिए दौड धूप की है, नेताओंसे परामर्श किया है, चन्दा इकट्ठा करनेका श्रम किया है, अर्जियाँ भेजी हैं, गुमनाम पत्र भेजे हैं और यहाँ तक कि मंत्रविद्याके गूढतम तंत्रोंका भी प्रयोग किया है । परन्तु फायदा कुछ भी नहीं हुआ है। अब एकमात्र उपाय यह रह गया है कि वे भी औरोंकी भांति दैनिक ''मस्ती''का आश्रय ग्रहण करें ।

पूर्वी आकाशमें सूरजको घेर कर घुमडते बादलोंको देखकर हेडमास्टर साहबने छुट्टीकी घोषणा की । स्कूलके बाहर सडकके मोडपर खडे होकर उन्होंने विद्यार्थियोंको वापस भेजा । उसके पश्चात् वे स्कूलमें प्रविष्ट हो दफ्तरमें रखे बकसपर बैठ गए और बगलमें संभालकर रखी दैनिक ''मस्ती''का स्वरोंके साथ पारायण करने लगे। उस दिनकी ''मस्ती''में उनका सचित्र लेख प्रकाशित हुआ था जिसमें उन्होंने ''मस्ती''के

अनुयोज्य भाषामें सरकारकी शिक्षानीतिकी तीव्र आलोचना की थी और अपने स्कूलके जीर्णोद्धारकी आवश्यकतापर जोर दिया था। "मस्ती"में वे इतने अधिक लीन हो गए कि उन्हें सर्द हवाके ज़ोरदार झोंकोंका पता ही नहीं लगा। वांछित फलदायकी "मस्ती"को उन्होंने मन ही मन प्रणाम किया, आंखें बंद कीं और सिर झुकाया। इतनेमें हवा इतने ज़ोरसे बही कि स्कूलका आधार स्तंभ टूटकर उसकी पीठपर गिर पडा और खंड-खंड हो बिखर गया। हेडमास्टर साहब मुस्कुराते हुए उठ खडे हो गए। बिखरी दीनताकी ओर देखकर उन्होंने अपने आप कहा—"बेचारा मुझसे भी ज्यादा दीन है।"

उधर सुदूर सरकारी दफ्तरमें हेडमास्टर साहबके स्थानान्तरणका मसौदा तैयार किया जा रहा था। ○

शेष सब मिथ्या है, माया है

वेदांतके प्राध्यापक श्रीमान कामाक्षीरमणजीने ''बौद्ध दर्शन''पर रखी ''फिल्मी दुनिया''के मुख पृष्ठपर अंकित सद्यस्नाता मुग्धावतीके चित्रको अपलक आँखोंसे देखते हुए कहा—'शेष सब मिथ्या है, माया है।' इसपर सामने ही बैठे हुए तर्कशास्त्रके प्रोफेसर झींकते हुए इतने ज़ोरसे झुँझला उठे कि उनके मुँहमें अटका क्षतविक्षत समोसा एकदम फुदक कर ''फिल्मी दुनिया''पर जा गिरा। मिथ्या वर्गके 'शेष सब'में सरकस कम्पनीकी दुर्गावतीका सिमट जाना उन्हें इतना अधिक बुरा लगा कि यदि कामाक्षी-रमणजी क्षीणकाय दुर्बल व्यक्ति होते तो वे निर्द्वन्द्व हो घूँसे अवश्य जमा देते। अब उन्होंने केवल इतना ही कहा—'काश! आप दुर्गावतीके दर्शन करते!' कामाक्षीरमणजीने दुर्गावतीको सरकसमें देखा था, भद्र लोगों के बीचमें देखा था और यहाँ तक कि 'रॉयल रेस्त्राँ'के मैनेजरकी कृपासे उनसे एकाध बार एकांतमें बातें भी की थीं। उन्हें अपने सहयोगी प्रोफेसरके अज्ञानपर दया आ गई और उन्होंने

आर्द्रस्वरमें कहा—'दुर्गावती ही नहीं, आप भी मिथ्या हैं, माया हैं।' दयार्द्र होनेपर भी व्यंग गहरा था; प्रोफेसर साहब तिलमिला उठे। फिर क्या था! वाग्युद्ध छिड गया; तर्क और दर्शन गुँथ गए। एकने मायाकी व्युत्पत्ति, विकास, परिणति और परमपदकी व्याख्या की और गर्जन और हस्त-ताडनके साथ अपने आराध्यकी रक्षा की और दूसरेने सद्सद् माया और मायातीतपदका विश्लेषण किया और हुँकार और उद्दाम सिरचालनसे अपने आराध्यके साथ अपनी भी रक्षा की। व्यंग्य-विद्रूप और वक्रोक्तिके समानांतर-प्रवाहोंमें वे जल्दी ही इतनी दूर निकल गए कि न उन्हें विषयका ध्यान रहा और न अपना ही।

अस्तगामी सूर्यकी अंतिम किरणें विश्वविद्यालयकी कैंटीनके प्रांगणमें बैठे विवादियोंकी पिंगल केशराशिको अपरूप आभा प्रदान करती हुई अंधकारमें घुल चुकी थीं। खेलका मैदान खाली हो चुका था और यहाँ तक कि यत्र-तत्र बिखरे मुहब्बतके जोडे भी बिदा हो चुके थे। कैंटीन बंद हो चुकी थी और बेयरा अतिसंवादी प्रोफेसरोंको अपने भाग्यपर छोडकर बिदा हो चुका था। इतनेमें उन्होंने देखा कि वृद्ध चपरासी हाँफता हुआ उनकी ओर भागा आ रहा है और एक बृहदाकार भैंस मृत्यु-सी उसका पीछा कर रही है। भयभीत प्रोफेसरोंकी लघु-गुरु सभी शंकाओंका एकदम समाधान हो गया। उन्होंने भागते हुए चपरासीका

साथ देनेमें ही कुशलता समझी। घोर संकटकी इस दशामें भी कामाक्षीरमणजीने "फिल्मी दुनिया"को बचाया। उधर महिष-नंदिनीको इनसानकी इस कापुरुषतापर इतनी अधिक दया आ गई कि उसका मन ही हिंसासे उचट गया और वह परित्यक्त "बौद्ध दर्शन"पर जुट गई। ○

अमर संवेदना

वेदांतके प्राध्यापक कामाक्षीरमणजीने दैनिक 'मस्ती'के साप्ताहिक संस्करणमें लिखा :—"प्रख्यात प्रेमी और रहस्यवादी कवि 'मिस्टिक'साहबके पत्रोंका यह बृहत् संग्रह ("अमर संवेदना") तरुण साधकोंका ही नहीं मुझ-जैसे वयःप्राप्त सत्यान्वेषियोंका भी पथ-प्रदर्शन करेगा। विभिन्न अवस्थाओं और समाजके विभिन्न स्तरोंके व्यक्तियोंके नाम लिखे ये पत्र कविके सर्वतोमुखी प्रेमका परिचय देते हैं। अपनी सुकुमार संवेदनाको एकाध व्यक्तियों तक ही सीमित रखनेवाले परम्परावादी प्रेमियोंके आगे "अमर संवेदना" महान चुनौती है। प्रेमकी यंत्रणाओंको व्यक्त करनेवाले अनेक दर्दनाक पत्र इस ग्रन्थमें संगृहीत हैं। इनका अध्ययन अतिभावुकता और आदर्शवादिताके घेरेमें बन्द साधकोंके लिए उपयोगी सिद्ध होगा। विकट परिस्थितियों और नाटकीय प्रसंगोंमें उत्पन्न वैचित्र्यपूर्ण भावोंको शब्द-बद्ध करनेमें कवि या तो असमर्थ रहे हैं या ऐसा करना उन्होंने हेय समझा है। ऐसे अवसरोंमें उन्होंने चिह्नों,

रेखाओं और रेखाचित्रोंका आश्रय लिया है। मधुर स्मृतियोंका वर्णन करनेवाले पत्र 'शार्दूलविक्रीड़ित' छन्दमें रचे गए हैं और वे गेय हैं। वियोगकी दशामें कविने अपने यहाँ जो प्रयोग किए हैं उनका कुछ पत्रोंमें विस्तृत वर्णन है। प्रयोगवादी कविताओंमें इनको स्थान दिया जा सकता है; क्योंकि इनमें कवित्वकी मात्रा कम है। अंतिम पत्र उत्कृष्ट मुक्तक है जिसमें तीव्र संवेदना देशज गालियोंमें व्यक्त हुई है। 'मजनू-मंडलसे' ग्रन्थका प्रकाशन हुआ है और पत्रोंका संपादन स्वयं मन्त्री महोदयने किया है। इस कार्यमें उन्हें जो यंत्रणाएँ सहनी पड़ी हैं उनका प्राक्कथनमें वर्णन है। गद्यगीतका यह सुन्दर उदाहरण है। ग्रन्थ सचमुच उपयोगी है और कवि अभिनन्दनके अधिकारी व्यक्ति हैं।'' ○

अविवाहित अफसर अब्दुल्ला साहब

अविवाहित अफसर और स्थानीय राष्ट्रकवि अब्दुल्लासाहबने फाइलोंको एक ओर सरकाया और सामने ही रखी काठकी बृहदाकार बकसपर ध्यानमग्न-सी बैठी बिल्लीको बड़ी कोमलतासे सहलाते हुए कहा—"विवाहको अबभी मैं बंधन ही समझता हूँ।" विवाह और विपत्तिको समानार्थक शब्द सिद्ध करनेके हेतु उन्होंने पिछले बत्तीस वर्षोंमें पैंतीस राष्ट्रकविताएँ लिखी हैं जिनकी हस्त-लिखित प्रतियाँ अबभी उनके पास सुरक्षित हैं। उनके तत्संबंधी व्याख्यान "मस्ती"के विशेष संवाददाता जगन्नाथकी कृपासे छप चुके हैं जिनकी प्रतियाँ उनके मित्रवर स्वामीजीके दवाखानेमें अबभी वर्तमान हैं। अयोग्यता और अवांछितदशासे उत्पन्न विवशता उनके अविवाहित रहनेका कारण रही हो, सो बात नहीं है; क्योंकि उनके प्रीतिपात्रोंकी सूची इतनी लम्बी है कि अचंभा होता है। उनकी धारणा है कि उनकी ही नहीं, उनके प्रीतिपात्रोंकी संवेदनाभी अंतर्मुखी हो गई है।

अब्दुल्ला साहबने बिल्लीका गला दबाया और इतने ज़ोरसे दबाया कि वह भयानक रूपसे चीत्कार कर उठी और अब्दुल्ला साहब चिल्ला उठे—'कम्बख्त! अबभी मैं विवाहको बंधन ही समझता हूँ।' चीत्कार और चिल्लाहटका सम्मिलित निनाद इतना वैचित्र्यपूर्ण और आकस्मिक था कि वृद्ध नौकर तम्बाकू बटुएमें ही छोडकर एकदम उनके पास आ गया। अब्दुल्लासाहबने नौकरको जबर्दस्ती खींचकर बड़ी निर्ममतासे पूछा—"तुम क्या समझते हो?" नौकरने हकलाते हुए कहा—"आप अविवाहित राष्ट्रकवि हैं और मैं बालबच्चेदार नौकर हूँ।" ○

एस्सर

अनुभवी हेड-क्लर्क होनेके कारण बाबू बांगड़ूजी अपना काम औरोंसे करानेमें अत्यंत निपुण हैं। हंसना, रोना, झींकना, झुंझलाना, यहां तक कि फेन-बुदबुदोंसे युक्त मिर्गी तकका प्रयोग वे ठीक वक्तपर इतने सुचारु ढंगसे करते हैं कि औरोंको उनकी मदद करनी ही पडती है। दफ्तरमें वक्तपर वे नहीं पहुँचते हों, सो बात नहीं है। जिन दिनों घरवाली "घर बंद" की धमकी देती है या उनके पन्द्रह वर्षीय लडकेके नेतृत्वमें अन्य बच्चे "सांस्कृतिक क्रांति" शुरू करते हैं तो वे वक्तके बहुत पहले ही दफ्तरमें पहुँच जाते हैं और संध्याके वक्त दफ्तरसे सीधे घर जानेकी अपेक्षा मित्रवर 'मिस्टक' साहबके यहाँ पहुँचकर मुफ़्तमें काव्यरसपान करते हैं और उनकी अर्द्धांगिनीका आतिथ्य स्वीकार करते हैं। अन्य दिनोंमें आने-जानेके क्रममें शिथिलता अवश्य रहती है जिसके लिए कम्पन-सिहरनके साथ वे खेद प्रकट करते हैं। बडे बाबूसे दफ्तरके ही नहीं, किसीभी मामलेमें उनका मतभेद नहीं है; अतः वे भाव-विभोर हो उनके हां में हां मिलाते हैं। यह प्रक्रिया प्रायः

अंग्रेज़ीके "एस-सर" से होती है। लाल स्याहीके धब्बोंकी भ्रांति उत्पन्न करनेवाले पीक-मार्कोंसे युक्त निस्पंद फाइलें, अधखुला बेडौल पानदान, रद्दीके टोकरे पर ऊकड़ूँ से बैठे 'अरजेन्ट' पर्चे और कुहनियाँ मेजपर टेके तथा हथेलियोंसे सिरथाम कर ऊँघनेमें व्यस्त चश्माधारी बांगड़ूसाहब कर्मकांडपर सचमुच बडा भारी व्यंग्य हैं।

बडे बाबूने डांटा, फटकारा, गलियाँ दीं पानदान उठाकर दूर फेंका और यहाँ तक कि मारपीटकी धमकी भी दी; परन्तु बांगड़ू साहबने जब केवल संक्षिप्त "एस-सर"को छोड कुछ भी नहीं कहा तो उन्होंने रपट लिखी। फिर क्या था! बांगड़ू साहब अपनी चिर-संगिनी छतरी बगलमें थामकर एकदम दफ्तरसे ओझल हो गए। बडे बाबूने जवाब-तलब किया, उनके घर आदमी भेजे, खुद भी उनसे घरपर मिले, नौकरी छूट जानेकी बात की; परन्तु "एस-सर"को छोड उन्हें कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ। तीन महीनोंके पश्चात् बांगड़ूजी दफ्तरमें ठीक वक्तपर बडे बाबूसे मिले और उन्हें पागल-खानेके सिविल सर्जन डॉ० मण्ट्रो एम० डी० का पत्र दिया। पत्रमें लिखा था—"बांगड़ूजीने पिछले तीन महीने पागल-खानेमें व्यतीत किये अब वे पूर्णरूपसे स्वस्थ हैं और नौकरीपर जा सकते हैं।" बांगड़ूजीने छतरी एक ओर कोनेमें रख दी और दफ्तरमें अपनी जगह जाने ही वाले थे कि बडे बाबूने कहा—"तुम पागल थे और हम मूर्ख।" बांगड़ू साहबके मुँहसे निकल पडा—"एस्सर।" ○

बाबू शिरोमणि

मेजकी दराजमें से बाबू शिरोमणिने सूखी सुपारीके महीन टुकडोंको बड़े यत्नसे छांटकर अलग किया और दराजकी समग्र विभूतियाँ बाहर बरामदेको भेंट कीं। उन्होंने कुरतेके पल्लेसे मेज़पर जमी मैल पोंछ डाली; लेकिन जब पीकके गोलाकार धब्बे टस से मस न हुए तो उन्होंने उन्हें अपने भाग्यपर छोड दिया और आरामकी साँस ली। सेक्रटरी साहबसे लेकर चपरासी तकके समग्र व्यक्तियोंसे ही नहीं, सचिवालयके बाहर तिराहेकी बगलमें चायकी दूकान करनेवाले वृद्ध ब्राह्मण-देवतासे भी वे बिदा ले चुके थे। सभीने परंपरागत पदावलीमें अपनी व्यथा और उनकी मंगल-कामना प्रकट की थी और बाबू साहबकी गीली आँखें बरबस रो पडी थीं और उन्होंने सोचा था, "काश! परम्परा इतनी सूखी न होती!"

सेंट्रल रोडकी बगलमें उठा फोडा-सा वह सचिवालय इतनी निर्मम दीवारोंसे घिरा है कि शिरोमणि सरीखे अनगिनत बाबुओंकी सम्मिलित सिसकियाँ भी बाहर

पहुँच नहीं पातीं। फाटकपर मूर्तिवत् खडे मोटे सिपाही चिलचिलाती धूपमें सचमुच चेतन प्रतीत होते हैं। फाटकके बाहर सबसे मोटे सिपाहीके दाईं ओर चिक्कटमें लिपटी एक बुढिया बैठी है जिसके आगे काठकी बकसपर सजी दुकानमें पान, बीडी सिगरेट आदिसे लेकर अमरूद और उबाले अंडें तकके समग्र पदार्थ प्राप्त होते हैं। उस मोटे सिपाही से उसकी विशेष ममता है और अत्यन्त विवश होनेपर ही उससे पैसेका तकाज़ा करती है। वह जानती है कि दफ्तरके बाबुओंसे पैसे वसूल करना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है और इस कठिन कार्यमें उस मोटे सिपाहीसे उसे अनेक अवसरोंमें सक्रिय सहयोग प्राप्त हुआ है। फाटकसे लेकर सचिवालय तककी लम्बी सडकके दोनों ओर उन्मत्त शराबियोंसे झूमते विलायती काटके देशी पौधे दफ्तर के बाबुओंका उपहास करते से प्रतीत होते हैं। दोपहरके वक्त कुछ कोमलांगी मोटर-गाडियाँ सचिवालयके द्वारपर आकर रुकती हैं और उनमें से कोट पतलून और विलायती जूतोंमें सजे कुछ वयःप्राप्त लडके उतर पडते हैं। द्वारपर खडे चपरासियोंकी कम्पित हथेलियाँ जुड जाती हैं और जर्जर ठठरियाँ सिकुड जाती हैं। उनकी ओर बगैर कोई विशेष ध्यान दिए ही विलायती जूते चरमराते आगे बढते हैं। सचिवालयके पीछे गाडियोंके अड्डे हैं जिनकी सुकुमार फर्शपर बडे अफसरोंके कृपा-पात्र बातूनी बाबू दोपहरके वक्त खाना खाते हैं और कभी कभी

एक–आध घण्टा सो भी लेते हैं। फाइलों और बाबुओंके परीक्षणार्थ तीसरे पहरको बड़े अफसर अपने-अपने विभागोंके दफ्तरोंकी ओर चल देते हैं और अशुद्ध अंग्रेज़ीमें गिटपिट करने लगते हैं। दफ्तरोंका दमघुटने लगता है और बाबुओंके प्राण फाइलोंमें अटक जाते हैं।

बाबू शिरोमणिकी गीली आँखोंसे दो बड़ी-बड़ी बूँदें मेज़पर जा गिरीं। बत्तीस वर्षोंके साहचर्यमें उत्पन्न और पली ममताकी वह अंतिम भेंट साकार जडतापर ज्यों ही त्यों पडी रही। जडतामें ममता कैसी? इतनेमें बड़े अफसर वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने जब देखा कि मेज़पर दो क्षुद्र जलकणोंके सिवा कुछ भी नहीं है तो वे एकदम गम्भीर हो उठे। वे फाइलोंके संबन्धमें अंग्रेज़ीमें गिटपिट करने ही वाले थे कि उन्हें याद आया—शिरोमणि रिटायर हो चुका है। वे मुस्कुरा उठे। शिरोमणिको एकदम फाटकपर दूकान करनेवाली बुढियाकी मुस्कुराहट याद आ गई। उस बुढियाकी मुस्कुराहटमें कितना, चुभता मर्मान्तक व्यंग्य है! काश! वह भी उस अफसरके आगे वैसे ही मुस्कुरा पाता! परन्तु गुलामीसे जड बनी आत्मा कहाँ मुस्कुरा सकती है।

उन्मत्त शराबियोंसे झूमते पौधे बाबुओंकी शिथिल संध्याका उपहास कर रहे थे। फाटकपर मूर्तिवत् खडे मोटे सिपाही सजग हो रहे थे। कोमलांगी मोटरगाडियाँ फाटकसे होकर जा रही थीं। बुढिया मुस्कुरा रही थी और बाबू शिरोमणि बुढियाको पैसेके बदले कलम दे रहे थे। ○

मणकीबाई और द्रौपदीका चीर

चालीस सालकी कुमारी मणकीबाई पिता मणकू साहबकी भांति पील-पांवसे भूषित है और दोनों केलिए विशेष प्रकारके जूते विलायतसे आते हैं। पिता-पुत्रीमें आकार-प्रकार और वेशभूषामें अंतर अवश्य है; किंतु तोंदका घेरा, गर्दनका तनाव आदिमें अद्‌भुत समानता है। दोनों महीन रेशम के कपडे पहनते हैं जिनसे हवाका आवागमन होता है। वृद्ध विधुर पिताने पुत्रीका बेडा पार लगाने केलिए इतनी बडी दौड़-धूप की है कि उसकी शतांश भी यदि पन्द्रह बीस साल पहले की होती तो यह नौबत ही नहीं आती। यौवनके अपराह्नमें सिसकती कन्याको अपने भाग्यपर छोडकर पिताने अब अपना बेडा पार लगाया है। उनकी अधखिली कलिका-सी कोमल वधू उनमें क्या, औरोंमें भी अभिराम कल्पनाको जन्म देती है। उधर मणकीबाई आहें भरती है; बडबडाती है, फुसफुसाती है और एकांतमें नर्तन करती है। जलनसे उत्पन्न खीझ और झुँझलाहटमें वह इतने ज़ोरसे हांफने लगती है कि पेट पीठ

दोनोंकी शामत आ जाती है। पडोसियोंकी दृष्टिमें उसके घटना-प्रधान अतीतकी यह अवश्यंभावी परिणति है और इस वजहसे वे निश्चिंत हैं। उसके पुराने प्रेमोन्मत्त परवाने अब ज़िन्दगीकी आँचमें झुलस रहे हैं। नोंन-तेल रोटी-कपडेके आंकडे जोडनेमें वे इतने अधिक व्यस्त हैं कि उन्हें ममतामयी मणकीकी याद तक नहीं आती।

दुमंजिले मकानकी छतपर गडे लौहस्तंभसे सटकर मणकीबाई खड़ी हो गई। बिछलती चांदनी विद्रूप सी उसे भासित हुई। अर्द्धरात्रिकी सर्द हवामें थिरकती उसकी अर्द्धशुभ्र केशराशि "नाच्यो बहुत गुपाल"की याद दिला रही थी। उसने खंभेको जकड लिया और इतने ज़ोरसे जकड लिया कि उसका सारा शरीर राग-रंजित हो झन-झना उठा। पथराई आँखोंसे आँसू नीचेकी ओर लुढक गए और रिक्त अंतर की आहोंने शून्यमें निर्वाण पाया। अकस्मात् उसे सौतेली माँ याद आ गई जो उस वक्त सुदूर सिनेमा घरमें पतिदेवके साथ सतवंती-सी बैठी ऊँघ रही थी। उसने अंतिम प्रयोग करनेका ही निश्चय किया। उसने महीन रेशमकी अपनी विलायती साडीका पल्ला खंभे पर कसकर लपेट लिया और दूसरा अपने गलेमें मज़बूतीसे बांधा। वह फुरतीसे फुदक कर इतने ज़ोरसे बाहर कूद पडी कि एक दम धरती पर पहुँच गई। यदि बिलायती साडीने द्रौपदीके चीर-सी लम्बी होकर धरती तक उसका साथ नहीं दिया होता तो उसका अंतिम प्रयोग सचमुच सफल हो जाता। ○

"मिस्टिक" साहब और विश्वशांति

यौवनके अपराह्नमें सिसकती कुमारी मणकीबाई ज़िन्दगीसे इतनी अधिक हताश हो गई कि उसने अपनी विलायती साडीका पल्ला गलेमें मज़बूतीसे बांधकर आत्मघात करनेका अभूतपूर्व श्रम किया जो साडीकी असावधानीके कारण सफल नहीं हुआ। वह छतपरसे नीचे मकानके बाहर धडामके साथ गिर पडी और विलायती साडीने द्रौपदीके चीर-सी लम्बी होकर धरती तक उसका साथ दिया। पील-पांवकी धनी मणकी बाईकी स्थूल टागें फैल गई और साकार स्थूलतामें सिमटी हड्डियां चरमरा उठीं। करुणार्द्र क्रंदन अर्द्धरात्रिके अंतरको भेद कर बहुत दूर निकल गया। "मिस्टिक मंडल"के संस्थापक तथा भूतपूर्व रहस्यवादी कवि मनमोहन "मिस्टिक" जो उस वक्त पास ही वैष्णव मन्दिरके स्नानघाटकी सीढियोंपर बैठे विश्व-शांतिकी तरकीबें निकाल रहे थे, एकदम वहाँ पहुँच गए। मणकीबाईके वृद्ध महाराज शिथिल धोतीको संभाले यद्यपि पहले ही वहाँ पहुँच गए थे तो भी निद्राके कारण बात उनकी समझमें अभी नहीं आई थी। ऐसे

मामलोंमें अनाड़ी न होनेके कारण मिस्टिकसाहब बात जल्दी ही समझ गए; मोटी सूझके महाराजको उन्होंने बात समझा भी दी। दोनोंने बजरंगबली महावीरजीका ध्यान करके मणकीबाईको उठाया और मकानके अंदर कुछ इस ढंगसे चल दिए मानों किसी पहलवानसे भिडने जा रहे हों। इस बीचमें मणकीबाईने हाथ-पांव पटककर इतने ज़ोरसे स्वर-साधना की कि उन्होंने उसे सर्द फर्शपर लिटानेमें ही कुशल समझी। विश्व-शांतिकी चिंतामें घुलते मिस्टिक साहबको शांति-भंगमें रत मणकीबाई साकार विद्रूप-सी प्रतीत हुई। एक ओर कोनेमें विराजमान अर्द्धशायित-सा गुमसुम डंडा प्रारंभिक उपचारका उपकरण हो ही नहीं सकता था। वे झुँझलाते हुए बाहर सडकपर आ गए और एकदम अंधकारमें ओझल हो गए। थोडी ही देरमें जब कि मणकीबाई रागालापका उग्रतम रूप प्रकट करने ही वाली थी कि मिस्टिक साहब प्रारंभिक उपचारकी दवा तन्द्रासवका घडा लिए हुए आ गए। मणकीबाई दवा गट-गट पी गई और इतनी अधिक पी गई कि मिस्टिक साहब केलिए थोडी भी नहीं बची। फिर क्या था! रागालाप थम गया, चेतना तन्द्रामें घुल गई और मणकीबाई श्रम शिथिल हथिनी-सी फैल गई। मिस्टिक साहब अब निश्चित हो, खाली घडा बगलमें थामे पुनः वैष्णव मंदिरके स्नानघाटकी सीढियोंपर आ गए—उन्हें लगा—विश्वशांति अब बहुत ही दूर है। ○

मणकू साहब और भारतीय भैंस

स्थानीय देशभक्त अफसरोंमें अग्रणी मणकूसाहबने मेज़पर सरकती अपनी तोंदको संभालते हुए शुद्ध अंग्रेज़ीमें कहा—"सज्जनो, तो मैं कह रहा था कि भारतीय भाषाओंकी व्यंजक-शक्ति अंग्रेज़ीकी अभिधाके आगे घुटना ही नहीं टेकती, पानी भी भरती है। विज्ञान, तर्क और तीव्र-संवेदनासे लेकर कद्दूकी मसालेदार चटनी तकके समग्र विषयोंकी व्याख्यामें सक्षम अंग्रेज़ी-अभिधाके आगे भारतीय भाषाएँ पानी भरनेके सिवा करेंगी ही क्या ?" पतलून प्रेमी अभिभावकोंने अर्द्धविवृत अधरोंसे प्रश्नको दुहराया और तालियाँ बजाईं जिसका वेतनभोगी अनुयायियोंने इतना ज़ोरदार अनुकरण किया कि बाहर सरकारी नलपर एकत्र दमयंतियों का झुंड चिन्तित हो उठा। मणकू साहबने आगे कहा—"मुहब्बत और मारपीटके अंतरालको प्रायः गाली—गलौज मेटती है और अंग्रेज़ी गाली—गलौज कितनी मार्मिक है, यह भुक्तभोगी ही जानता है।" अनुभूत ज्ञानपर अधिष्ठित तथ्य-कथनका किसीने भी

विरोध नहीं किया यद्यपि सभी देशी गाली–गलौजकी मार्मिकतासे परिचित थे । उन्होंने अंग्रेज़ी अभिधाकी करामातोंके कई उदाहरण प्रस्तुत किये और अनेक भाव-भंगिमाओंके साथ विलायतके अपने विशिष्ट अनुभवोंका वर्णन किया । उन्होंने कहा—"इंग्लैंड और अमरिकाके प्रगतिशील विश्वविद्यालयोंमें प्रतिदिन नूतन और मर्मान्तक गालियोंका निर्माण होता है और उनके आदान-प्रदानका माध्यम अंग्रेज़ी है । जब मैं उनसे भारतके विश्वविद्यालयों की तुलना करता हूँ तो मेरा सिर लज्जासे नत हो जाता है।" सचमुच उनका सिर नत हो गया और इतने ज़ोरसे नत हो गया कि मेज़ चरमरा उठी । उन्होंने दोनों हाथोंसे सिर थाम लिया और दर्दनाक लज्जाके भारी बोझको वहन करते हुए पीछे कुरसीकी ओर इतनी फुर्तीसे लुढक गये कि यदि ठीक समयपर दैनिक "मस्ती" के सम्पादकने उन्हें संभाला नहीं होता तो आटोग्राफ़के लिए एकत्र अबलाओंकी बडी भारी दुर्गति हो गयी होती ।

सभाकी समाप्तिके पूर्व ही मणकू साहब सभासदोंसें बिदा हुए । उन्होंने अस्फुट स्वरोंमें अपने उक्ति वैचित्र्यकी सराहना की और वे फुरतीसे फुदक कर अपनी अमरीकी कारकी स्टियरिंग पर बैठ गए । फिर क्या था ! कारकी करामातें शुरू हुईं । सरकारी सडकपर शैतान-सी सवार वह अमरीकी कार अंग्रेज़ी-अभिधा सी लचकती हुई अंधाधुंध आगे बढ़ी । लम्बे अभिसारके पश्चात् जब वह

चौराहे की बगलमें दुबक कर बैठी देशी शराबकी दूकानसे उलझ गई तो वहाँ सत्संगमें रत सज्जनोंने पत्थरों, सडे अंडों और रिक्त कुल्हडोंसे उसका ज़ोरदार स्वागत किया; और इतना ज़ोरदार स्वागत किया कि मणकूसाहब बिलख-बिलख कर रोने लगे। अभिसारिका को अपने भाग्यपर छोडकर मणकूसाहब भागने ही वाले थे कि दूकानके प्रोप्रैटरने उन्हें गिन कर पचास ऐसी देशज गालियाँ सुना दीं, जिनकी व्यंजक-शक्ति प्रगतिशील अंग्रेज़ीके लिए भी गौरवकी वस्तु हो सकती थी। उधर दूर तांगेवालोंके बीचमें खडी भैंस भी अपनी व्यंजक-शक्तिका भरपूर प्रयोग कर रही थी और मणकूसाहबने सोचा–'भारतीय भैंसकी व्यंजना भी सचमुच तीव्र ही होगी'। ○

घर आपका ही है

किरानी होनेके कारण शर्माजीकी आय कम है। अवस्था उनकी पैंतालीस सालकी है और दीखते भी उससे कम नहीं हैं। शरीर उनका कृश है और इतना कृश है कि सरकारी बसोंमें सभीको भला लगता है। बीमार पत्नी, वृद्धा माता और तीन बच्चे, दुनियामें केवल इन्हीं लोगोंपर उनकी हुकूमत है। पत्नीके प्रति उनमें इतना बड़ा प्यार है कि सरकारी बागसे फूल और शाक-भाजी लाकर उन्हें भेंट करते हैं। मातापर वे सचमुच हुकूमत करते हैं; हाँ, जब डांट-डपट और गाली-गलौजका मौका आ जाता है तो वे पाकिस्थान जानेकी धमकी देते हैं और बीडीका टोंका जलाते हुए चुपचाप खिसक जाते हैं। बच्चोंको वे इच्छा न रखनेपर भी झंझट समझते हैं, परन्तु किसीसे कहते नहीं हैं। भूख सहनेके आदी होनेके कारण खाने-पीनेकी समस्या उनके लिए कोई समस्या ही नहीं है। हाँ, पहनने-ओढनेकी समस्या जटिल अवश्य है जिसके कारण उनका समग्र परिवार दिन-भर परेशान रहता है।

शर्माजीकी न राजनीतिमें कोई दिलचस्पी है और न सिनेमामें ही; किन्तु इसपर भी वे दैनिक ''मस्ती'' हफ्तेमें एक बार अवश्य पढ़ लेते हैं।

संध्याका वक्त था। शर्माजीके ड्राइंग-रूमकी ढिबरी जल चुकी थी। रसोईमें बच्चे बिल्लीसे झगड़ रहे थे; बाहर वर्षामें भीगती हुई बकरी मिमिया रही थी और शर्माजी अपनी तिपाईके आकारकी बकसपर बैठे स्वरोंके साथ ''मस्ती''का पारायण कर रहे थे। अब वे पूर्ण रूपसे निश्चित थे। मकान-मालिकनको उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें बता दिया था कि न वे किराया दे सकते हैं और न वे मकान ही खाली कर सकते हैं। साथ ही उन्होंने उन्हें यह सूचित भी कर दिया था कि वे उनकी नूतनतम गालियोंको भी चुपचाप निगल जानेकी क्षमता रखते हैं। इस मकानके प्रति उनके मनमें कोई रागात्मक आकर्षण हो, सो बात नहीं है। इस मकानको अगर वे सचमुच ही चाहती हैं तो वे कोई बढ़िया मकान उनको दिलवा दें। शर्माजीने सामने ही फर्शपर पडा बीडीका टोंका जलाया, एक लम्बा कश खींचा और ''मस्ती''के प्रान्तीय समाचारोंका दुबारा अध्ययन करने लगे। इतनेमें बाहर बकरीका मिमियाना तनिक तीव्र और विचित्र होता-सा प्रतीत हुआ। शर्माजीने दरवाजा खोला। देखा, मकान-मालिकन बकरीके सामने ही खडी सिसक रही थी। शर्माजीको उनपर बडी दया आ गई। उन्होंने अपने ड्राइंग-रूममें उनका स्वागत किया।

मकान-माल्किनने हकलाते हुए शब्दोंमें अपनी दीनता प्रकट की और कहा कि उनकी बेटी और दामदने उनकी सारी संपत्तिपर अधिकार जमा लिया है और उन्हें घरसे निकाल बाहर किया है तथा अब वे आश्रयकी खोजमें हैं। उन्होंने दीनतामें सने शब्दोंमें शर्माजीसे आश्रयकी याचना की। शर्माजीकी आंखोंमें आँसू आ गए और उन्होंने उन्हें आश्वासन दिया—"आप निश्चित रहिए। घर आपका ही हैं।" ○

रायल रेस्त्राँ

पंडित फल्गूरामजीका रायल रेस्त्राँ राजकीय अजायबघरके भागकी भ्रांति उत्पन्न करता है। आकार-सौष्ठव, साज-सज्जा, वैभव, चकाचौंध इत्यादि अनेक बातोंमें दोनोंमें अद्‌भुत समानता होनेपर भी एकाध गौण बातोंमें अंतर अवश्य है। जहाँ एकमें वैचित्र्यपूर्ण प्रसाधनों और मानवेतर जीवोंका संग्रह होता है, वहाँ दूसरेमें संबंध मानवसे होनेपर भी संग्रह केवल धनका ही होता है। रेस्त्राँमें एक ओर दरवाज़ेके सामने ही आठ दराज़ोंवाली मोटी मेज़ और उन्नत पायोंवाली कुरसी विराजमान है जो पंडितजीकी सूझ और सुरुचिका परिचय देती हैं। बुद्ध, गांधी, नेहरू, स्टालिन, पंडितजीके स्वर्गस्थ चाचा, फिल्मी देववृन्द आदिकी तस्वीरोंसे दीवारें शोभित है और संध्याके वक्त जब रंगीन बत्तियोंकी आभा उनपर विकीर्ण होती है तो गाहकोंका ध्यान जबर्दस्त उनकी ओर आकृष्ट हो जाता है। शीशा लगी मेज़, शीशेकी थालियाँ, कद्‌आदम आइने और चश्माधारी बेयरे बिजलीकी रंगीन बत्तियोंके

आलोकमें ही नहीं अन्य अवसरोंमें भी रेस्त्राँ मायालोकका शीशमहल प्रतीत होता है। सफाई, सजावट, खान-पानकी श्रेष्ठता, व्यवहार और व्यापारकी चारुता आदिकी दृष्टिसे इसका समकक्षी कोई रेस्त्राँ शहरमें न होनेके कारण ढलते अपराह्नमें भी यह व्यस्त हैं; न बेयरे ऊँघ पाते हैं और न पंडितजी ही। अविवाहित अफसर, मुग्धा नायिकाएँ अभिजात वर्गके अतृप्त दम्पती, कर्मठ मजनूमंडल, व्यापारी महाजन आदि सभी इसकी ममतामयी छायामें दीन-दुनियाको भूल खाना खाते हैं, दही-बड़ेके साथ चाय पीते हैं, गपशप करते हैं और यहाँ तक कि देशज गालियोंका भी प्रयोग करते हैं।

रेस्त्राँकी बत्तियाँ प्रायः सभी बुझ चुकी थीं। पंडितजी कोट पतलून और रेशमी कमीजके बंधनोंसे मुक्त हो लुंगीमें लिपट चुके थे और उनकी लटकती तोंदको संभालनेमें व्यस्त मोटा मलिन जनेऊ यथार्थवादकी कटुताकी ओर संकेत कर रहा था। बेयरे बिदा हो चुके थे और अंतिम गाहक-दम्पती बाहर खडे मन ही मन भोजनकी सराहना कर रहे थे। इतनेमें उनके सामने सब्जीमंडीकी भरी लॉरी आकर रुकी। उन्होंने झांक कर अन्दर देखा और देखते ही रह गए। अस्त-व्यस्त शिथिल मुद्रामें पडी विवर्ण सब्जियोंमें कीडे बिलबिला रहे थे और उनके अग्रज झगड रहे थे। एक दार्शनिक कुत्ता उनमें से सार ढूँढ रहा था। लॉरी पंडितजी के गोदामकी ओर चल दी। ○

गरम चाय

साढे तीन खम्भों और चार बेडौल पत्थरों पर स्थित वह गरम चायकी दूकान पंचायतकी विशेष कृपासे अनुगृहीत उस चौराहे केलिए गौरवकी वस्तु कदापि नहीं हो सकती । यदि उस दूकानके स्थानपर अब्दुल्ला साहबका जनाना अस्पताल होता तो सचमुच उस चौराहे का सौंदर्य बढ जाता और अत्यन्त व्यस्त और विवाहित पंडित रामदास भी उसकी ओर अनायास खिंच जाते । प्रोप्रैटरका नाम और एक प्याली गरम चायका दाम लिखा काठका एक बोर्ड दूकानके द्वारपर टंगा है जो जिंदगीके थपेडोंसे जर्जर वृद्ध विधुरकी याद दिला देता है। सत्तर सालके लगने वाले प्रोप्रैटर साहबकी आयुके संबधमें कोई निश्चित धारणा उनको क्या, किसीको भी नहीं है । छोटा कद, गंजा सिर संकीर्ण माथा, बहती नाक और आँसू भरी आखें दीनताके साकार प्रतीक प्रोप्रैटर साहबसे कम्यूनिस्ट जगन्नाथको छोड उधारकी बात कोई भी नहीं करता । उनका अकेला पुत्र पुलिस कांस्टबिल है जिसका

औरोंकी भांति वे भी आदर करते हैं। उस पुत्रकी उद्दंडता चिंतनशील व्यक्तियोंमें चर्चाका ठोस और स्थाई विषय है और जब वे उसके रहस्यको समझनेमें असमर्थ हो जानेके कारण आश्चर्य प्रकट करते हैं तो प्रोप्रैटर साहब उसे बुरा मानते हैं और उन्हें बडा दुःख होता है। बाईस साल पूर्व गरम चाय तैयार करते वक्त एक-दम उलट कर मरी पत्नीकी स्मृति उनके मनमें अबभी इतनी अधिक सजग और तीव्र है कि अकसर उनकी आखें भर आती हैं और उनकी सजग दृष्टि सुदूर शून्यमें गड जाती है।

अर्धरात्रिके घने अंधकारमें चौराहे की सरकारी लालटेनकी अंतिम लौ विलीन हो चुकी थी। प्रोप्रैटर साहबका चूल्हा बुझ चुका था और उनकी ढिबरीकी धुँधली किरणें खुले दरवाज़ेके सामने ही बिछाए मलिन बिस्तरपर बिखर रही थी। वे कुप्पी बुझाना ही चाहते थे कि वह अपने आप बुझ गई। दरवाज़ेपर टंगा बोर्ड उठाकर वे सिरहाने रखना ही चाहते थे कि वे एक-दम लुढक गए। उनके पैर फिसल गए और वे दूकानके बाहर लुढक गए।

दूसरे दिन दोपहरके पूर्व ही कांस्टबिल पुत्रने प्रोप्रैटर पिताके निर्जीव शरीरको बगैर किसी प्रकारकी विशेष सजधजके अंतिम बिदा दी और संध्याके वक्त बडे धूमधामसे उस चायकी दूकानमें "सिटी सैलून" का उद्घाटन समारोह सम्पन्न हुआ। ○

सोशलिस्ट साहब जिंदाबाद!

दूकानको सडककी बगलमें मैदानके एक ओर छोड कर वाहक बैल फुरतीसे फुदककर अलग हो गया मानों जान-पहचानका भी नहीं हो। पान, बीडी, सिगरेट, गरम चाय इत्यादि क्रांति-पोषक पदार्थोंकी वह दूकान इनकलाबी जुलूसके स्वागतार्थ एकदम सजकर तैयार हो गई। दूकानदारने सचित्र समाजवादका काला कैनवस बैलकी पीठ और पुट्ठों पर डाल दिया और रंगीन रस्सीसे उसे मज़बूतीके साथ बांधा, ताकि वह सभाकी समाप्ति तक वहीं बंधा रहे। चित्रकी पृष्ठभूमिमें कैनवसपर उपयोगी नारे मोटे अक्षरोंमें लिखे हुए थे जो चित्रकी व्यंजक-शक्तिको इतनी अधिक मात्रामें बढाते थे कि लोगोंका ध्यान जबर्दस्त चित्रकी ओर आकर्षित हो जाता था। दूकानदारका अष्टवर्षीय पुत्र पैसेकी सन्दूकको दोनों हाथोंसे थामे दूकानमें बैठा हुआ था; छोटी उम्रमें ही वह साध्यकी सुरक्षाका महत्व समझ गया था। उधर दूकानदार नीचे धरती पर खडा होकर अद्‌भुत सरगरमीके साथ

गरम चाय तैयार कर रहा था। मैदान अपराह्नके अवसाद से मुक्त हो चुका था; परन्तु धूप अभी निश्शेष नहीं हुई थी। यत्र-तत्र खडे वृक्षोंकी छायामें समाजवादके अभिभावकोंने आसन ग्रहण किया जिनकी साधुताके प्रति संदिग्ध होनेके कारण सामने ही सुसताते आवारे बकरोंमें सनसनी पैदा हो गई और वृक्षोंपर बैठे पक्षी उड गये। मैदानके मध्य-भागमें स्थित पक्केमंचपर दो कुरसियोंके योगसे बना एक ढांचा रखा हुआ था जो कैनवस और गद्दोंसे इस सुरुचिके साथ सजाया हुआ था कि लोगोंका ध्यान असलियतकी ओर जा ही नहीं पाता था। अध्यक्षके आकार और सुविधाको ध्यानमें रखकर यह आयोजन किया गया था। सेठ सैंधवलालजीकी ओरसे अध्यक्ष पद अलंकृत होनेवाला था। सेठजी सच्चे सोशलिस्ट थे और स्वयं अपनी मिलोंके मज़दूरोंका नेतृत्व करते थे जिससे न मिलोंमें हडतालें होती थीं और न मज़दूरोंके वेतनमें वृद्धि ही।

पूर्व निश्चित योजनाके अनुसार ठीक संध्याके वक्त सेठजीके नेतृत्वमें जुलूस इनकलाबका नारा लगाता हुआ आ पहुँचा। सेठजीको देखते ही दूकानदारने ही नहीं उसके अष्टवर्षीय पुत्रने भी नारा लगाया–"सोशलिस्ट साहब जिंदाबाद! इनक़लाब जिंदाबाद!" इसका बैलने

श्रद्धानत हो अनुमोदन किया। सेठजीने उन तीनोंको देखा और फिर अपनी ओर। स्मित हास्यसे उनका चेहरा दीप्त हो उठा और वे मंचकी ओर प्रस्थित हुए। दूकान खाली हो चुकी थी और सन्दूक भर चुकी थी। अतः दूकानदारने समाजवादका कैनवस बैलसे अलग करके दूकानमें रख दिया और सभाके प्रारंभके पूर्व ही कारोबार समेट कर प्रस्थित हुआ। ○

आगे कौन हवाल ?

देशी मेमकी विलायती साइकिल जब एकदम विद्रोह कर उठी तो मेम साहबा कोलतारकी खुरदरी सडकपर औंधे मुँह गिर पडी। सडककी बगलमें मरम्मतखानेके बाहर खडे कर्मवीर मजनुओंमें कुशल-क्षेम पूछने केलिए भग-दड मच गई। मेम साहबाने उन्हें सिसकती अंग्रेज़ीमें धन्यवाद दिया और मार्मिक इशारोंसे अपनेको बचाया। उधर मरम्मतखानेके मैनेजर अब्दूसाहब अपने ढीले पतलूनके सरकते पल्लेको संभालते हुए बाहर आ गये। उन्होंने सिसकती मेम साहबाकी ओर बगैर कोई विशेष ध्यान दिए ही, विद्रोहजन्य शिथिलतामें चूर साइकिलको संभाला। निस्पन्द पहियोंसे जर्जर टयरोंका संबन्ध-विच्छेद-सा हो चुका था और लाल रबडके घाव स्पष्ट दिखाई दे रहे थे मानों एक साथ सभी परम-पूज्य पिताकी याद कर रहे हों। अब्दू साहबने कहा—'वात-विकार है, उदर देवता अप्रसन्न हैं, अभी ठीक किये देता हूँ'। साइकिलको जबर्दस्ती घसीट कर वे अंदर ले गए मानों चीज़ साइकिल

ही नहीं हो और काम सचमुच आसान हो। साइकिलकी दुर्गतिपर ममतामयी नारीका अंतर रो उठा और वे उसके पीछे चल दीं। दूकानमें विभिन्न उपयोगोंकी गाडियोंके ही नहीं वाद्ययन्त्रोंके भी भग्नावशेषके अम्बार लगे हुए थे जिनपर टायरों और रबड-खण्डोंसे आसन सजाये गये थे। एक ओर महीन भूसेका बोरा बड़ी सतर्कतासे संभालकर रखा हुआ था, जिसका दूकानमें कोई उपयोग हो ही नहीं सकता था। मेमसाहबाने सोचा; 'मैनेजर साहबके यहाँ कोई दुधारू भैंस हीगी।' उन्होंने आसन ग्रहण किया। उनके अंग-अंगमें पीडा इतनी अधिक घनीभूत हो उठी थी कि विकल रागिनी अनायास ही बज उठती थी। दूकानके भीतरी भागमें श्यामवर्ण प्रस्तरोंसे बनी संडास-सी संकीर्ण प्रयोगशाला थी जिसके द्वारपर मोटे अक्षरोंमें लिखा हुआ था—'अंदर आना मना है।' अपने अनुभूत ज्ञानके आधारपर अब्दूसाहबने साइकिलपर प्रयोग किए और इतने अधिक प्रकारके प्रयोग किये कि साइकिल अज़ीबो-गरीब आवाज़में सिसकने लगी। यहाँ तक कि उससे शीर्षासन भी कराया गया। किन्तु इसपर भी जब वात-विकारका उपचार नहीं हो पाया और टायरोंमेंसे हवाका आवागमन अवरुद्ध नहीं हुआ तो उन्होंने संकटकालीन प्रयोग करनेमें ही कुशल समझी। बातकी बातमें भूसा अंदर लाया गया। फिर क्या था! सिसकियाँ एकदम बन्द हो गईं और साइकिल थोडी ही देरमें सद्य-स्नाता-सी

निखरकर बाहर आ गई। मेमसाहबाने एक रुपया अब्दू-साहबके दाएँ हाथमें थमा दिया और कुछ इस ढङ्गसे देखा मानों पूछ रही हो, सुननेको क्या मिलेगा। लेकिन जब अब्दूसाहबके चेहरेपर मात्र मुस्कुराहट खिल उठी तो वे निश्चित हो एकदम फुर्तीसे फुदक कर साइकिलपर जा बैठीं और अंधाधुंध पैर चलाने लगीं। साइकिलके भारी पहिये मन्थर-गतिसे घूमते-घामते आगे सरकने लगे और अब्दू-साहबके मुँहसे निकल पडा—'आगे कौन हवाल?' ०

दुनियादारीका मर्म

दुनियादारीमें समर्थ स्थानीय महानुभावोंकी दृष्टिमें पंडित संकीर्तनशर्माजी मूर्ख ही नहीं, पागल भी हैं और शर्माजीके मनमें इनके प्रति तनिक भी ईर्ष्या नहीं है। अत्यंत व्यस्त ये समर्थ व्यक्ति अपने अवकाशके इक्के-दुक्के अवसरोंमें शर्माजीपर व्यंग करते हैं और आत्मविस्मृत हो हंस पडते हैं। जीवित व्यर्थतापर कौन व्यंग नहीं करता? अपने बाल-बच्चोंको नेक रास्तेपर लाने केलिए ये शर्माजीके अर्थहीन और व्यर्थ जीवनका उदाहरण देते हैं और भाव-विभोर हो अर्थकी महिमाका बखान करते हैं। उधर शर्माजी अपनी धुनमें इतने अधिक मस्त हैं कि इनकी ओर उनका ध्यान ही नहीं जाता। उनका एकमात्र पुत्र शहरमें काम्पौंडर है और अपने अवकाशके समयमें डाक्टरी करता है। अर्थ संचयमें विशेष रुचि होनेके कारण वह मरीजोंसे उधार भी पैसा लेता है और कभी-कभी लौटाता भी है। पिता-पुत्र दोनोंने एक दूसरेको नेक रास्तेपर लाने केलिए, झाड-फूंक और मंत्रविद्या तकका आश्रय ग्रहण किया है;

परन्तु कोई फायदा नहीं हुआ है। दोनों अब एक दूसरेके प्रति ऐसे उदासीन हैं मानों जान-पहचानके भी नहीं हों। पंडितजीकी अर्द्धांगिनी ममताके कारण दोनोंको बुद्धिमान मानती आयी है और उनमें समझौता करानेका उसका श्रम अब भी जारी है। थोडी-सी ज़मीन, छोटा-सा घर और कुछ बेडौल बर्तन पंडितजीको पूर्वजोंसे प्राप्त हुए हैं और ये आधुनिकताके आघातोंसे पूर्ण-रूपसे मुक्त होनेके कारण ऐतिहासिक महत्व रखते हैं। पंडितजी अपनी आयु और स्वास्थ्य दोनोंके प्रति निश्चित हैं। जनमतके अनुसार वे नब्बे साल पार कर चुके हैं और पंडिताइन प्रायः कहा करती है कि उनका पचासवां चल रहा है। सज्जन लोग पंडिताइनके कथनका सुधार करते हैं— पचासवां उनके पुत्रका चल रहा है। पंडितजी आत्मीयताके अवसरोंमें पंडिताइनको दुनियादारीका मर्म समझाने केलिए सूक्तियां कहते हैं जो इतनी अधिक दुसह होती हैं कि पंडिताइन भौं चकी-सी रह जाती है। वे स्वयं व्याख्या भी करते हैं — 'दुनियादारी में सफल व्यक्ति उसका मर्म नहीं जानता और जब जानता है, निस्पृह हो जाता है।'

अपने खेतकी बगलमें दुबककर बैठे वृद्ध आम्रवृक्षकी छायामें पण्डितजी बैठे हुए थे। दोपहर यद्यपि बीत चुकी थी तो भी हरियाली अब भी आहें भर रही थी। खेतकी सीमापर पण्डितजीके यत्नसे लगाये जंगली गुलाबके घने पौधोंसे फूल झुलसकर झड रहे थे और उनसे तीखी

गंध उड रही थी। पण्डितजीने ममताभरी दृष्टिसे उस महान व्यर्थताकी ओर देखा और देखा उन पौधोंको जिनके बारेमें पण्डिताइनने कहा था — 'खेतकी रक्षा फूल क्या करेंगे? उपयोगी कांटे ही हैं।' पण्डितजी बैठे नहीं रह सके। वे उन पौधोंकी ओर बढने ही वाले थे कि उन्होंने देखा — पण्डिताइन विक्षिप्त-सी उनके सामने खडी है। पंडिताइनने कहा — 'लल्लूने मकानको आग लगा दी, भरे बाज़ारमें हज़ारोंके नोट जला डाले। पुलिसवाले उसे पकड ले गये। अब वह अस्पतालमें पडा तुम्हें याद कर रहा है। खबर कम्यूनिस्ट किस्नू ले आया है। 'पंडितजी पल-भरके लिए गंभीर हो उठे; परन्तु जल्दी ही संभल गये। उन्होंने शांत और स्निग्ध-वाणीमें कहा — 'वह दुनियादारीका मर्म समझ गया है; मैं अब उससे मिलूँगा।' ○

पंडितजी अंडे नहीं खाते

"पंडितजी, आप अंडे क्यों नहीं खाते ?"

"श्रेष्ठ समाजपरिष्कर्ताओंके सामाजिक जीवनसे असंबद्ध कार्य-कलापोंके प्रति अत्यधिक जिज्ञासा प्रकट करनेकी संवाददाताओंकी अत्यंत अस्वस्थ प्रवृत्तिके संबंधमें विद्वत्तापूर्ण वक्तव्य मैं कई बार प्रकाशित कर चुका हूँ जिनकी हस्त-लिखित प्रतियां कोदंडस्वामीके दवाखानेमें सुरक्षित हैं।"

"ब्राह्मण होनेकी वजहसे शायद अंडे....."

"वर्णाश्रम व्यवस्थासे सीधा सबंध रखनेवाले ब्राह्मण-अब्राह्मणके भेदोंकी तहमें निहित स्वार्थसाधनकी अपवित्र मनोवृत्तिका बौद्धिक निरूपण मेरे प्रख्यात ग्रन्थ "ब्रह्म और ब्राह्मण"में कई स्थानोंमें तुम्हें देखनेको मिलेगा।"

"हिंसाको बुरा समझते होंगे। तभी शायद अंडे..."

"हिंसा और अहिंसा सापेक्षिक शब्द होनेके कारण मूलतः समानार्थक हैं और उन्हें विरोधी तत्वोंके रूपमें ग्रहण

करनेवाले गांधीवादियोंके प्रति मुझमें रागात्मक आकर्षण क्यों आकर्षण ही नहीं हो सकता । इस अवसरपर मैं तुम्हें सूचित करना चाहता हूँ कि हिंसा और अहिंसाको समानार्थक ही नहीं बल्कि एक ही तत्व माननेवाले साम्यवादियोंके आगे मेरा सिर अकसर श्रद्धासे नत हो जाता है ।''

''कोई मनोवैज्ञानिक कारण ?''

''शारीरिक दृष्टिसे ही नहीं बल्कि मानसिक दृष्टिसे भी अत्यंत स्वस्थ मुझ जैसे व्यक्तियोंसे मनोविज्ञान और मनोविश्लेषणकी बात करनेवाले तुम धृष्ट और उद्दंड दोनों हो । तुम्हें यह सूचित करनेमें मुझे तनिक भी संकोच नहीं है कि यदि तुम समाचार-पत्रका संवाददाता होनेकी अपेक्षा मेरा सहकारी सेक्रटरी होते तो मैं अवश्य तुम्हारी मरम्मत करता ।''

''अंडे शायद सस्ते नहीं होंगे ।''

''मैं तुम्हारी समझदारीकी सराहना करता हूँ ।'' ○

केशसंवर्धिनी गोलियाँ

वैद्यराज विश्वंभरजीकी केशसंवर्धिनी गोलियोंका सचित्र विज्ञापन जब दैनिक 'मस्ती'में प्रकाशित हुआ तो दारोगा दीनबन्धुकी अर्द्धांगिनीने चपरासीको भेज दो दर्जन गोलियां मंगवा लीं। चित्रांकित कामिनीकी कांत कायापर लिपटी भुजंगिनी-सी वेणी उनके लिए सचमुच ईर्षाकी वस्तु थी। अद्‌भुत मनोयोग और निष्ठाके साथ उन्होंने गोलियोंका सेवन करना शुरू किया। साथ ही उन्होंने दो कद्‌दे आदम आइने भी मंगवा लिये ताकि ग्रीवापर समाधिस्थसे बैठे बालोंकी क्रमिक वृद्धिका आसानीसे पता लग सके। गोलियोंकी करामातकी कल्पनाने उनके अंतरको इतना अधिक मथ डाला कि वे दारोगा साहबके प्रातःकालीन क्रुद्ध नर्तनके वक्त भी गुमसुम रहने लगीं, मानों उनसे कोई वास्ता ही नहीं हो। खाना-पीना, उठना-बैठना, सोना-जागना झूमना-झीमना आदि उनसे यंत्र-चालित-से होने लगे मानों अब इनसे भी उनका कोई वास्ता नहीं हो। दाल-भात, रोटी-सब्जीके प्रति ही नहीं उनके

अत्यंत प्रिय मसालेदार पापडके प्रति भी उनमें विरागकी भावना पैदा हो गई। अठारह दिनोंमें उन्होंने उन्नीस गोलियाँ समाप्त कीं। फलस्वरूप वजन उनका कम हुआ, कायापलट-सी हो गयी, पथराई आँखोंके आगे चित्रांकित कामिनी की भुजंगिनी-सी वेणी थिरकने लगी और पलकोंके नीचे गालों तक काले काले डोरेसे खिंच गये। उकड़ूँ बैठनेमें उन्हें इतना अधिक आनन्द अनुभव होने लगा कि कद्दे आदम आइनेकी कोई आवश्यकता ही नहीं रह गई। इस बीच दारोगा साहबने बातका पता लगानेका ज़ोरदार यत्न किया। उन्होंने उनसे मुहब्बतमें सने शब्दोंमें पूछताछ की, डांटा, फटकारा, गालियाँ दीं, यहाँ तककि गोलीसे उडानेकी धमकी भी दी। परन्तु फायदा कुछ भी नहीं हुआ। पत्नी ऐसी चुप रही मानों गूँगी ही नहीं बहरी भी हो। किंकर्तव्यविमूढ हो दारोगा साहब आंगनमें पाल्थी मार कर बैठ गये। वे बडी निर्ममतासे अपना सिर पीटने ही वाले थे कि चपरासीने उन्हें थाम लिया। चपरासीने अब आत्मनियन्त्रण घातक समझकर बात सारी दारोगा साहबको समझा दी और साथ ही यह भी कहा कि वैद्यराज अपने ही यहाँका है और मकान उनका सरकारी पुलके पास है। दारोगा साहबके माथेपर दृढनिश्चयके सूचक गहरे बल पड गये और वे फुरतीसे उठ खडे हो गये। उसी दिन शामको महाराजिन, चपरासी और एक कांस्टबिलकी सहायतासे

उन्होंने पत्नीको अस्पताल पहुँचाया। इलाज और तत्संबंधी कार्योंका प्रबन्ध करके जब वे कांस्टबिलके साथ अस्पतालसे बाहर आ गए तो रात आधी क्या एक तिहाई भी नहीं रह गयी थी। लौटते वक्त दोनों वैद्यराजके यहाँ गए जो उस वक्त अपने मकानके अधखुले दरवाज़ेकी आडमें बैठे कांतिवर्धक चूर्ण बोतलोंमें भर रहे थे। दारोगा साहबने दरवाज़ेपर धक्का दिया, दरवाजा खुला। बोतलोंके बीचमें चूर्णमें सराबोर वैद्यराज दिखाई दिये। उन्होंने दोनों हाथों से वैद्यराज को ऊपर उठाकर उछाला और ठीक वक्तपर ऐसी भरपूर लात जमा दी कि वैद्यराज बाहर आँगनमें बहुत दूर जा गिरे। कांस्टबिल मुस्कुरा दिया। दारोगा साहब एकदम चुपचाप थाने की ओर चल दिया मानों भिडना अब केवल अपनेसे रह गया हो। ○

मंगल कामना

पंडित दिगम्बरनाथजी शर्माके जर्जर मकानकी अर्द्ध-शायित-सी देहली-से जो पगडंडी शुरू होती है वह आगेके विराट मैदानकी शिथिल बालुकाके कारण सरकारी सडकपर पहुँच नहीं पाती। मैदानके उस पार सडककी बगलमें पंडितजीकी "जनरल स्टोर्स" है जिसमें पान, बीडी, सिगरेट और साबुन-से लेकर शरबत और संतरे तकके समग्र पदार्थ प्राप्त होते हैं। ईंटोंपर रखी फूसकी उस दूकानके द्वारपर टंगा विकलांग विज्ञापन बोर्ड सचमुच श्रांत प्रतीत होता है। गरमियोंके दिनोंमें दो चरमराती बेंचें दूकानकी बगलमें विश्राम पाती दिखाई देती हैं जो शामके वक्त गाहकोंके स्वागतार्थ बाहर मैदानमें पहुँच जाती हैं। लगभग पचास गजके फासलेपर दिगम्बर देवताका मंदिर है जिसके सूने आंगनकी सीमा निर्द्धारित करनेवाले दिगम्बर वटवृक्षकी तहमें भक्तजन हितैषी बाबा रामदासकी बहस होती है। देशी शराबकी दूकान यद्यपि वहाँसे काफी दूर है तो भी, हो हल्ला हुल्लड और हुंकारकी ध्वनि वटवृक्ष

तक पहुँच ही जाती है। परन्तु भक्तजन ही नहीं, स्वयं बाबाजी भी उसके विरुद्ध आवाज़ उठाना आवश्यक नहीं समझते। प्रातःकाल "जनरल स्टोर्स"के खुलनेके पूर्व-ही गीले कुरते और कुरतियां ही नहीं, किनारेदार साडियां, रंगीन चोलियां और बृहदाकार जम्परों तकके समग्र प्रकारके कपडे मैदानमें बिछ जाते हैं जो अपराह्नके पूर्व ही हटाए जाते हैं। मैदानके मध्य-भागमें गडे दो मोटे किंतु पुराने बांसोंके बीचमें पंडित दिगम्बरनाथजीकी धोती बंधती है जो तभी हटाई जाती है जब लोग 'बैडमिन्टन' खेलने आ जाते हैं। 'बैडमिन्टन' प्रेमी इन लोगोंमें तरुण विद्यार्थियों और अविवाहित नेताओंकी संख्या ही अधिक है। पंडितजी 'बैडमिन्टन'को नये युगकी सनक समझते हैं; किन्तु किसीसे कहते नहीं हैं। 'जनरल स्टोर्स'के पास ही, मैदानके एक और वृद्धों और वृद्ध विधुरोंका शास्त्रार्थ होता है और पान, बीडी और तंबाकूका सेवन यहीं ज़्यादा होता है।

पंडित दिगम्बरनाथजी पैंसठ सालके विवाहित व्यक्ति हैं और सचमुच सुखी दीखते हैं। उनका कद लम्बा है, रीढकी हड्डी मज़बूत है और यदि उनके दुर्बल शरीरकी शेष हड्डियां पील पांवकी मोटी टांगोंपर डोलती-सी नज़र नहीं आती तो वे अत्यंत साधारण प्रतीत होते। मूर्धापर बडी निर्ममतासे कसकर बंधी सन-सी श्वेत शिखा, पिचके गालोंके गहरे गड्ढोंको घेरकर वीरासनपर बैठी मज़बूत

हड्डियां, चपटे ओठोंकी आडमें दुबककर बैठे एकाध पीले दांत, माथेपर बृहदाकार त्रिपुंड और उसकी बगलमें अतीतके अवैधनिक प्रेम और तरुण संवेदनाके प्रतिदानके रूपमें प्राप्त चाकूकी चोटका गहरा दाग पंडितजीके आकारमें वैचित्र्य-पूर्ण व्यक्तित्वका ज़राभी आभास नहीं मिलता। "दिग्गू पंडित" और "अम्बाजी" नाम उन्हें अच्छे ही लगते हैं; परन्तु "जनरल पंडित"से चिढते हैं और लोगोंको उनकी चिढ अच्छी लगती है। रुग्ण अर्द्धांगिनी, वृद्धा-माता और विधुर बहनोई दुनियांमें केवल इन्हीं लोगोंपर उनकी हुकूमत है और उनका दावा है कि वे सभी उनकी हुकूमतको मानते हैं। अपने परिवारके लोगोंके प्रति उनमें इतना बडा प्यार है कि वे उनके लिए भोजन, वस्त्र इत्यादिका प्रबंध करते हैं और आप बहनोईकी भांति खाना भले ही अच्छा खाते हों, कपडे ज़रूरत भरके ही पहनते हैं। पत्नी उनके अचेतन मनमें इतनी अधिक घुलमिल गई है कि एकांतमें ही नहीं, भरी दूकानमें भी स्वरोंके साथ उनकी याद करते हैं और भोजनके वक्त उनकी प्रिय सूखी सब्जी आप कम खाते हैं। माताको वे साकार ममता मानते हैं और अकसर औरोंसे यह बात कहते भी हैं। हाँ, उनके पुराण, प्रपंच चर्चा और बकझकसे उन्हें गुस्सा अवश्य आ जाता है। माता और पत्नीके बीचमें सब्जीसे लेकर वेदांत और ब्रह्म-विद्या तकके समस्त विषयों पर अकसर विवाद होता है और सैद्धांन्तिक मतभेदके अवसरपर प्रायः गाली

गलौज और मार्जनी प्रयोग होता है। उनके बहनोई हृष्ट-पुष्ट तौर अत्यंत स्वस्थ समाज-सेवी व्यक्ति हैं और पडोसिनोंकी पारिवारिक समस्याओंको बडी निपुणतासे सुलझाते हैं। पंडितजी अपने बहनोईको झंझट ही मानते हैं, किन्तु बात अपने तक ही रखते हैं।

अठारह वर्ष पूर्व जब पंडितजी परम्परागत और अपनेलिए अत्यंत प्रिय पुरोहिताईको अन्तिम बार प्रणाम करके "जनरल स्टोर्स"में जम गए थे तब न सरकारी पुल बना था और न मैदानमें वैचित्र्यपूर्ण वस्त्र खंड ही बिछ जाते थे। भक्तजन हितैषी बाबा रामदास उन दिनों कद्दूकी खेती करते थे और अवकाशके समयमें औरोंके यहाँ जाकर ताश खेलते थे। देशी शराबकी दूकान उन दिनों भी व्यस्त थी और वहाँ होहल्ला भी होता था; किन्तु दूकानके अन्दर वर्णाश्रम व्यवस्थाका पूरा पालन होता था। गरीबीसे त्राण पाने केलिए पंडितजीने पुरोहिताईसे बिदा ली हो और "जनरल स्टोर्स"में जम गए हों, सो बात नहीं है। अपने यहाँ भर-पेट खाना और ज़रूरतसे ज़्यादा पहनना पंडितजी पुरोहितों केलिए भारी व्यसन समझते आए हैं और पुरोहिताईके दिनोंमें वे उनसे बचे भी हैं। उनके यजमान उनके प्रति न उदासीन रहे हैं और न अनुदार ही। शाब्दिक सहानुभूति उन्हें उनसे प्रायः सभी अवसरोंमें प्राप्त होती आई है और उदार वे इतने अधिक रहे हैं कि चवन्नीसे

लेकर अठन्नी तककी दक्षिणा ही नहीं, अनेक उपयोगी प्रतीत होनेवाले पदार्थ भी उन्हें उनसे प्राप्त हुए हैं। उनके मकानके आगे मुँह बाए पडी शिथिल बालुका उनके भू-दान प्रेमी यजमानसे उन्हें दानमें प्राप्त हुई है जिसे अबोध व्यक्ति सरकारी समझते हैं। पुरोहिताईके अंतका कारण प्रेम समझनेवाले व्यक्ति आवारे ही नहीं बुद्धू भी हैं। जीवनके ढलते अपराह्नमें ही पुरोहिताईको अंतिम बार प्रणाम करके वे 'जनरल स्टोर्स'में जम गए थे। माथेपर त्रिपुंडकी बगलमें पडा गहरा दाग उन्हें यौवनमें ही प्राप्त हुआ था और उसीके साथ उनके प्रेमी जीवनका भी अंत हुआ था। मनोविश्लेषणविशारद कोई उटपटांग कारण भले ही ढूँढ निकालें, किन्तु स्वस्थ और चिंतनशील व्यक्तियोंके लिए यह कार्य अत्यंत कठिन है और पंडितजी इसके संबंधमें मूर्तिवत् मौन हैं, मानों बात सचमुच भगवानकी हो। बात चाहे कुछ भी हो "जनरल स्टोर्स" अब उनके जीवनका एकमात्र संबल है और उनकी कामना है कि स्वर्गारोहणके वक्त भी यह उनका साथ दे।

सरकारके शुभचिंतक स्वस्थ शहराती व्यक्तियोंकी यह प्रार्थना कि स्वर्गारोहणके वक्तकी कायापलटका अंतिम अनुष्ठान शहरमें न हो, संकट-मोचन सरकारने सुनी और एकदम, तत्संबंधी आदेश भी निकाला। आज्ञाकारी जिलाधीशने शहरके बाहर आठ मील दूरीपर स्थित गांवके

पंडित दिगम्बरनाथजीके मैदानको इस केलिए उपयुक्त घोषित किया। पंडितजीको जब यह समाचार मिला तो उनका कौर मुँहमें ही अटक गया और वे औंधे मुँह थालीमें गिर पडे। भक्तों और धर्मभीरू सज्जनोंने यह आपत्ति की कि दिगम्बर देवताके मंदिरके निकट श्मशानका होना अवांछनीय है, पाप है। परन्तु सरकारके स्थाई संस्कृत-पंडितोंने संस्कृतसे उद्धरण देकर प्रमाणित कर दिया कि संहार-देवता शिवजीके निकट श्मशानका होना वांछनीय ही नहीं अनिवार्य भी है। शास्त्रार्थप्रेमी वृद्धों और वृद्ध-विधुरोंको यह बता दिया गया कि वे सरकारी पुलके नीचे या श्मशानके एक कोनेमें शास्त्रार्थ करें। "बैडमिंटन" प्रेमियोंकी ओर ध्यान ही नहीं दिया गया। ढाई सप्ताहोंमें ही मैदानके चारों ओर शहराती प्रस्तरोंका मज़बूत घेरा बना और पंडितजीको यह सूचित किया गया कि "जनरल स्टोर्स"के स्थानपर लोहेके खंभे गडेंगे और फाटक बनेगा।

"जनरल स्टोर्स"की सादी लालटेनकी धूमावृत आभा अंधकारमें घुलती जा रही थी और सर्द हवामें विकलांग विज्ञापन बोर्डके बंधन शिथिल होते जा रहे थे। अंधकार इतना अधिक घना हो चुका था कि देशी शराबकी दूकानका हुल्लड ही नहीं कुल्हडोंपर पडे बाबा रामदासकी स्वरसाधना भी समाप्त हो चुकी थी और पंडितजी अब भी अपनी दूकानमें निश्चित-से बैठे थे मानों अब सब कुछ हो चुका हो।

पंडितजीने ''जनरल स्टोर्स''का साथ दिया । प्रातःकाल ''जनरल स्टोर्स''के द्वारपर पंडितजीकी निर्जीव काया मुँह बाये पडी दिखाई दी और संध्याके वक्त मैदानके परिवर्तित रूपका उद्घाटनसमारोह सम्पन्न हुआ और मंत्री महोदयने उसकी मंगल कामना की । ○

व्यस्तवर्तमान

भक्तजनहितैषी बाबा रामदासजीके 'साधनागृह' और गंगूजीके 'सिटीसलून'के बीचमें अर्द्धशायित-सी दशामें स्थित वह वृद्ध आम्रवृक्ष व्यस्त वर्तमानपर व्यंग्य-सा भासित होता है। दूर तक फैली उसकी उभरी जड़ोंके सिरे धरतीकी गोदसे चिपके हुए हैं, मानों ममता अभी निश्शेष नहीं हुई हो। 'साधनागृह' और 'सिटीसलून'पर उसकी मोटी और खुरदरी शाखाएँ अभय हस्त-सी फ़ैली हुई हैं। उसका कद्दे-आदम दरार 'सिटी सलून'के रद्दी मालका गोदाम है। वहां जाडेकी रातोंमें 'साधनागृह'का श्वानश्रेष्ठ आराम केसाथ स्वरसाधना करता है। शाखाओंमें यत्र-तत्र बिखरी हुई टहनियां हर साल मौर धारण करती हैं जो उच्छृङ्खल लडकों और बालकबुद्धि व्यक्तियोंके मनोविनोदका साधन बनती हैं। इसपर भी उनमें एकाध आम अवश्य लगते हैं जिनको लेकर बाबाजी और गंगूजीमें द्वन्द्वात्मक विवाद होता है; हां, मारपीट नहीं होती। विवाद केवल अवकाशके समयमें ही होता है और भावाभिव्यक्ति केलिए प्रयुक्त शब्दों और संकेतोंमें अद्‌भुत प्रकारकी एकरूपता

होती है। बरसातके दिनोंमें वृक्षकी तहमें एकत्र गंदगी 'साधनागृह'के आंगनमें बिखरकर पवित्र हो जाती है और बाबाजी बडी निष्ठाके साथ उसका संस्कार-कार्य करते हैं। भक्तजनोंके हितको ध्यानमें रखकर आंगनकी सीमाके संबंधमें स्वयं बाबाजीने धारणा बना रखी है और उनका दावा है कि केवल गंगूजी ही उसका विरोध करते हैं। भक्तजनोंमें स्त्रियां बाबाजीका समर्थन अवश्य करती हैं; पुरुष प्रायः सभी मौन हैं जिसे बाबाजी समर्थनका द्योतक मानते हैं। पुरुषोंके मौनका कारण यह है कि वे गंगूजीको अप्रसन्न करना नहीं चाहते। वे जानते हैं कि निकटस्थ 'सलून' अठारह मील दूर है और स्थानीय व्यवसायियोंमें अभ्यासका अभाव है। वृद्ध-वृक्षकी आयु और ऐतिहासिक स्थितिको लेकर भी विवाद प्रचलित है जो किंवदंतियोंपर अधिष्ठित होनेके कारण सत्यान्वेषणमें सहायक नहीं होते। यथार्थ असलमें प्राचीनताके दुर्गम-दुर्ग में बंद है। वृक्षकी गरिमाका यह प्रमुख कारण है। बाबाजीका कथन है कि वह उनके परदादा लक्ष्मणदासजीका लगाया हुआ है। अब उसपर उनका जन्मसिद्ध अधिकार है। इसके समर्थनार्थ वे निम्नलिखित कथाका उपयुक्त अवसरोंमें भावभंगिमाओं केसाथ प्रचार करते हैं। लक्ष्मणदासजी ग्राममल्लोंके नेता थे। उनके दर्शन मात्रसे लोगोंके लौकिक पारलौकिक सभी प्रकारके विवाद और झगडे शांत हो जाते थे और गिल्ली-डंडेमें व्यस्त लडके भयभीत हो भाग

जाते थे। वे हकलाते थे; अतः कथनीकी अपेक्षा करनीमें उनकी आस्था अधिक थी। एक बार एक अतिसंवादी दार्शनिक युवक विवादकी चरमसीमामें प्रतिद्वन्द्वीको घूँसे जमाकर निकटस्थ इमलीके पेडपर जा बैठा और लगा देशज गालियाँ बकने। लक्ष्मणदासजीको जब इसकी सूचना मिली तो वे एकदम घटनास्थली पर पहुँच गए। उन्होंने हकलाते हुए किंतु दृढता केसाथ कहा कि वह नीचे उतरकर शंका-समाधान करे। लेकिन युवक न माना। इसपर लक्ष्मणदासजीने बाएँ हाथसे वृक्षको धक्का दिया जो इतना अधिक जोरदार साबित हुआ कि इमलीकी जडें तक चरमरा कर क्रन्दन कर उठीं और युवक धडाम केसाथ धरती पर आ गिरा जहाँ उसकी लघु, गुरु सभी शंकाओंका समाधान हो गया। लक्ष्मणदासजी सत्यानुरागी, न्यायप्रिय और कर्मठ व्यक्ति थे जिन्हें सपनेमें अन्याय-दमनके दौरे होते थे। बुढापेमें संधिवातसे उनकी अंग-संधियां सेव-सी सूज गईं जिससे त्राण पाने केलिए उन्होंने कैलास-वासी दिगम्बर देवताका बडे मनोयोगसे इकतालीस दिनों तक ध्यान किया। देवताने यद्यपि उन्हें दर्शन नहीं दिए तो भी एक दिगम्बर सन्यासीको उनके पास भेज दिया। सन्यासीने उन्हें एक आम दिया जिसके सेवनसे संधिवातसे वे मुक्त हो ही गए; साथ ही पैंतीस वर्ष और जिंदा भी रहे। उसकी गुठली उन्होंने अपने आंगनमें गाड दी। विवादग्रस्त वृक्ष उसीकी संतान है। गंगूजीके अनुसार

लक्ष्मणदास असलमें रक्षणदा थे जो जातिके नाई थे और उनके परदादाके साले थे। कथाकी अन्य बातोंके प्रति उनका कोई विरोध नहीं था।

बाबा रामदासजीने अपनी सन-सी श्वेत शिखाओं बंधनमें लानेका श्रम करते हुए आगे कहा—"तो मैं कह रहा था, अनासक्तके आगे माया घुटना ही नहीं टेकती पानी भी भरती है। आसक्ति मायाकी बुभुक्षा है और ऐसी बुभुक्षा है जैसी एकादशीकी अर्द्धरात्रिमें भक्तोंको हुआ करती है।" बाबाजीकी विस्फारित दृष्टि भक्त-मंडलकी परिक्रमा करती हुई दूर वृक्षकी टहनियोंमें जा अटक गई। देशी शराबकी दूकानके प्रोप्रैटर रामू काका जो उस वक्त वृक्षकी तहमें बैठे मच्छर-छाप बीडीका धुआं उगल रहे थे, इस दृष्टिको देख आश्चर्यमें आ गए। क्योंकि उनके यहाँ बाबाजीको पधारे पूरा एक सप्ताह बीत चुका था। पास ही बैठे हुए भिषगाचार्य विश्वंभरजीको मिर्गीकी आशंका हुई। परन्तु जल्दी ही वे संभल गए क्योंकि संकट-कालीन दवाइयोंकी बकस वे साथ लाए थे। स्त्रियां जो अब तक बाबाजीकी स्वररागसुधाका पान कर रही थीं, स्थितिकी गरिमाको समझ स्वरों केसाथ सुबकने लगीं। बाबाजीकी दृष्टि भक्त मंडलकी पुनः परिक्रमा करती हुई जल्दी ही दाएं ओर रखे गाजर, मूली, भिंडी, बैंगन, कद्दू इत्यादिपर आ केंद्रित हुई जो उन्हें भक्त-जनोंकी ओरसे उपहारके रूपमें प्राप्त हुए थे। लोगोंने निश्चितताकी सांस

ली। वृक्षके पत्तोंसे छन छन कर स्निग्ध चांदनी नीचे आंगनमें भक्त-जनोंपर बिखर रही थी। उसकी अपूर्व आभामें भक्त-जनोंका मानों अभिषेक हो रहा था। बुजुर्ग भक्तोंकी पिंगल केशराशि 'सिटी सलून'का मानों उपहास कर रही थी। बाबाजीने बंधनमें सिमटी अपनी शुद्ध शुभ्र शिखाको दोनों हाथोंसे सहलाते हुए आगे कहा—"आसक्त-अनासक्तका अंतर मुझ जैसे संतोंके आगे भले ही स्पष्ट हो जाय, आप लोगोंके आगे वह स्पष्ट नहीं हो सकता, स्पष्ट हो ही नहीं सकता; क्योंकि आपकी साधना अभी अधूरी है। जड-चेतनके प्रति परहि**तार्थ** जो आसक्ति होती है वह सत्यमायासे प्रेरित होनेके कारण सत्यान्वेषणमें सहायक होती है। अतः वह अनासक्तिके अंतर्गत है।" बाबाजी पल-भर के लिए रुके। उन्होंने भक्त-जनोंकी ओर देखा जिनके चेहरोंमें उन्हें निर्द्वन्द्वताको छोड कुछ भी दिखाई नहीं दिया। उन्हें लगा, मर्मको वे पकड नहीं पाये हैं। स्पष्ट-कथन उन्होंने आवश्यक समझा। ऊपर अभयहस्त-सी फैली हुई शाखाओंकी ओर संकेत करते हुए उन्होंने अपनी स्वाभाविक गंभीरताके साथ कहा—"उदाहरणार्थ इस वृक्षके प्रति मेरी जो आसक्ति है, उसकी तहमें औरोंका हित, आपका हित, भक्त-जनोंका हित वर्तमान है; अतः वह अनासक्तिके अंतर्गत है। गंगू सरीखे मतिमंद व्यक्तियोंकी मोटी समझ यदि इसे पकड न पाये तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है।" फिर क्या था! लोग एकदम उठ

खडे हो गए। उनकी समझमें बात आ गई। गंगूकी ओर संकेत धर्मोपदेशके अंतका सूचक चिह्न था। मतिमंद भक्तोंकी निर्मम अनासक्तिपर बाबाजीको रोना आ गया और उन्होंने आर्द्र-दृष्टिसे दाएं ओर देखा जहाँ रखे वनस्पति विशेष उन्हें ममताके अधिक अधिकारी प्रतीत हुए। बाबाजीके धर्मोपदेशों और दार्शनिक परिसंवादोंकी परिणति प्रायः इसी प्रकार हुआ करती थी।

देशी शराबकी दूकानके प्रोप्रैटर रामू काकाने बीडीका टोंका जलाया और एक लम्बा कश खींचते हुए कहा—'दारोगा साहब, झगडेका अंदेशा है।' दारोगा दीनबंधु साहब जो उस वक्त प्रोप्रैटर साहबकी कुरसीपर बैठे झीम रहे थे एकदम फुरतीके साथ उठ खडे हुए। उन्होंने रामू काकाको जबर्दस्ती पकड कर ज़ोरसे पूछा—"काहेका? कहाँ? किसलिए?" ग्राहक इतने अधिक भयभीत हो गए कि उनकी मस्ती एकदम काफूर हो गई और यदि रामू काकाने उन्हें इशारेसे समझाया नहीं होता कि आशंकाकी कोई बात नहीं है तो सचमुच वे भाग गए होते। रामू काकाने दारोगासाहबसे प्रार्थनाकी कि वे पुनः आसन ग्रहण करें ताकि वे शांत हो मूल बात समझें। दारोगा साहब बैठ गए। लोगोंकी जानमें जान आई। रामू काकाने बीडीका टोंका कनपटीपर रखा, ढीली लुँगी संभाली, अत्यंत शांत हो, सावधानी केसाथ कहना शुरू किया—"गंगूजी अपने

भतीजे केलिए "जनतारेस्त्राँ" बनवाना चाहते हैं और चाहते हैं कि वह उसी जगहपर बने जहाँ बाबाजीका पेड है। झगडा पुराना है; परन्तु यह समस्या नई है। "रेस्त्राँ" बनेगा और अवश्य बनेगा। पेड कटेगा। कुल्हाडीवाले शंभुने बताया है।" रामूकाका पल-भर रुके। उन्होंने दारोगा साहबकी ओर देखा जिनके माथेपर गहरे बल पड गए थे, आंखें शून्य-सी फैल गई थीं, चेहरा सूखे कद्दू-सा सिकुड गया था और अर्द्धविवृत अधरोंसे लार टपक रही थी। रामू काका स्थितिकी गंभीरताको अवश्य समझते थे; परन्तु इसका प्रभाव दारोगा साहबपर इस रूपमें पडेगा, इसकी उन्होंने कल्पना तक नहीं की थी। किसी अप्रत्याशित दुर्घटनाकी आशंकासे वे काँप उठे। अमंगल अपने यहाँ न हो, इस उद्देश्यसे बात उन्होंने जल्दी ही समाप्त की। कहा—"बाबाजीने समाधिकी धमकी दी है और अनुयायियोंने मारपीट और दुर्गापाठकी। गंगूजीके अनुयायी कम्यूनिस्ट हैं, जिनको आपसे ज़्यादा कौन जानता है? पेड अभी नहीं कटेगा। कुल्हाडी मैंने रखवा दी है। शंभू कल पैसा नहीं दे रहा था।" दारोगा साहब फुरती केसाथ उठे, टोपी संभाली और झुंझलाते हुए इस तरह फुदक कर बाहर निकल गए मानों सचमुच मारपीट, समाधि और दुर्गापाठ एकसाथ वहीं हो रहे हों। रामू काका धम्मसे अपनी कुरसीपर बैठ गए और सिर थाम कर सोचने लगे—"अब क्या होगा?" उसी दिन

शामको भिन्न अवसरोंमें दारोगाजीने दोनों विवादियोंको थानेमें बुलाया, पूछताछ की, डांटा, फटकारा, और यहां तक कि गोलीसे उडानेकी धमकी भी दी और अंतमें आश्वासन दिया। एककी ओरसे उन्हें तरकारीसे भरा टोकरा मिला और दूसरेकी ओरसे दस रुपयेका नोट। दोनों निश्चित हो अपने अपने आयोजनमें जुट गए।

बाबाजी स्वयं भक्तजनोंके यहां पधारे और इसबार उन्होंने दार्शनिक पदावलीकी अपेक्षा साधारण शब्दोंका प्रयोग करना अधिक उचित समझा। कहा—"वृक्ष संहार-देवता दिगम्बर का है। उसकी हानि होनेपर क्या होगा, संत ही जानते हैं। खुजली और खसरासे लेकर चेचक, मिर्गी और यक्ष्मा तककी समग्र बीमारियोंपर देवताका अधिकार है और इतना जबर्दस्त अधिकार है कि गंगू ही नहीं आप भी मिट जायेंगे। मैंने समाधिका आयोजन किया है और इससे बढकर संत कर ही क्या सकता है?" बाबाजीने भक्तजनोंकी ओर देखा। उनके चेहरे आतंक-जन्य उद्वेगसे विकृत हो गए थे। बाबाजी इतने अधिक-प्रसन्न हो गए कि यदि अपनेको संभालनेमें उनसे ज़रा भी असावधानी होती तो बनी बात एकदम बिगड जाती। दूसरे ही दिन ढलते अपराह्नमें अनुनासिक स्वरोंवाली सुन्दरी पार्वतीके यहाँ स्त्रियोंकी सभा हुई। गोशालाके पीछे तिरपन स्त्रियां एकत्र हों और गायें परेशान न हों,

यह संभव नहीं था। परन्तु उस ओर ध्यान किसीका भी नहीं गया। चर्चा शुरू हुई। अंधाधुँध ध्वनियां एक दूसरेसे उलझ गईं। उद्दाम सिरचालनसे वेणी-बंध शिथिल हो गए। चूडियां खनकीं, आंचल धराशायी हो धूल झाडने लगे और यहाँ तक कि गायें ही नहीं, दूर ध्यानमग्न-से बैठे वृषभ महाराज भी चिंतित हो उठे। चर्चा बहुत दूर आगे बढी; किन्तु मूल बात बरतन भांडोंकी बारीकियों और सूखी सब्जीकी करामातोंमें उलझ गईं और ऐसी उलझ गई कि फिर उसने आगे बढनेका नाम न लिया। समयका उन्हें ध्यान ही नहीं रहा। जब पार्वतीके पंचवर्षीय जुडुआं बच्चे दादीके नेतृत्वमें सन्ध्यावंदनके नामपर ऊधम मचाने लगे तो पार्वतीने समझा—'संध्या हो गई है।' उन्होंने वैद्यराज विश्वंभरजीकी पत्नीको इशारेसे बुलाया जो उस वक्त पतिदेवके महारास्नादि काढेपर ज़ोरदार वक्तव्य दे रही थी। दोनों फुसफुसाने लगीं।

"अब क्या हो?"

"मैं क्या बताऊँ?"

"कुछ सूझता है?"

"सूझता बहुत-कुछ है; लेकिन यह मामला संगीन है।"

"और एक बैठक हो तो कैसा रहे?"

"हाल यही रहेगा। बेकार है।"

"तो क्या पेड कट जाने दें?"

"यह कैसे कहूँ?"

"तो तुम्हीं बताओ, अब क्या किया जाय।"

"ऐसे टेढे मामलोंमें तुम क्या करती हो?"

"मैं अपने 'उन'से पूछती हूँ और जिन दिनों बोलचाल बंद रहती है उन दिनों वल्लभशास्त्रीजीसे पूछती हूँ। शास्त्रीजी जन्तर-मन्तर, जादू और ज्योतिषके आचार्य हैं; और भी विद्याएं जानते हैं।"

"शास्त्रीजीसे पूछेंगे। क्यों?"

"जी हाँ, शास्त्रीजीसे ही पूछेंगे।"

(पार्वती वैद्यराजको धूर्त समझती थी; उनकी केश-संवर्धिनी गोलियोंका हाल ही में उन्होंने सेवन किया था। वैद्यराज और पत्नीमें बोलचाल बंद थी। विवादजन्य-शांतिके दिन थे।) इस प्रकार एकदम अनायास ही समस्या सुलझ गई। शैतानकी खाला-सी समस्यासे जूझनेका काम शास्त्रीजीको सौंपनेकी कल्पना दोनों केलिए इतनी अधिक मादक थी कि वे भाव-विभोर हो सीत्कार कर उठीं। अब केवल उक्त निश्चयका प्रसार मात्र अपेक्षित था जो पार्वतीके अनुनासिक स्वरोंमें सम्पन्न हुआ। सभा समाप्त करनेमें

कोई विशेष कठिनाई नहीं हुई । क्योंकि अधिकांश स्त्रियां पहले ही जा चुकी थीं ।

उधर गंगूजीने इनकलाबी नोटीसें छपवा कर साथियोंको मुफ्तमें बांट दीं । उन्होंने 'सलून'में संदिग्ध व्यक्तियोंके प्रवेशपर सख्त रोक लगाई और द्वारपर लाल फीतेसे बंधा बोर्ड टांगा जिसमें लाल चूनेसे लिखा था— 'इनकलाब ज़िंदाबाद ।' उन्होंने अपने स्थाई, अस्थाई सभी प्रकारके दुश्मनोंको यह निर्मम सूचना दी कि 'सलून'से अब उनका कोई वास्ता नहीं रहेगा । उधर अपने साथियोंके प्रति उन्होंने अद्‌भुत प्रकारकी उदारता प्रकट की जिससे उनके साथियोंने विशेष रूपसे फायदा उठाया । अर्थहानिकी ओर उन्होंने ध्यान ही नहीं दिया । ''जनता रेस्त्रां'' ''साथियों केलिए वर्ग-हीन श्रेणी-रहित समाजके प्रादुर्भावका सूचक चिह्न था । वह समाज कितना भव्य होगा जिसमें वर्ण, वर्ग न होंगे, विद्या, बुद्धि विवेक, अर्थका समविभाजन होगा, सब आकार-प्रकार, गुण-धर्म सभीमें पंजाबी लड्डू जैसे समान होंगे । वह दिन कितना मादक होगा जब लोग ब्राह्मण- अब्राह्मणके भेद-भावोंको भूल कर एक साथ ''जनता रेस्त्राँ''में चायकी चुसकी लगायेंगे और मुहब्बतके गीत गाएँगे । अपनी दूकानमें वर्णाश्रम व्यवस्थाको बनाये रखनेवाले रामू काकाका तब क्या हाल होगा ? साथियोंने अद्‌भुत मनोयोग और निष्ठा केसाथ ''जनता रेस्त्राँ''की तहमें निहित प्रतीकवादका प्रचार किया । सिनेमा-घरके

बाहर, चाय और शर्बतकी दूकानोंके अन्दर, बंद दूकानोंके बरामदोंमें, दिगम्बर मंदिरके मैदानमें बैलगाडियोंके अड्डेपर सरकारी पुलके नीचे-मतलब-सभी इनकलाबी जगहोंमें उन्होंने क्रांतिका आह्वान किया। उन्होंने रात रात-भर जाग कर नारे लगाए। उन्होंने चैन और आरामको नहीं जाना, औरोंको भी जानने नहीं दिया। प्रचार-कार्यकी समाप्ति किस ढंगसे हो, इसके संबंधमें 'सलून' में गंभीर चर्चा हुई जिसमें न मारपीट हुई और न कोई उल्लेखनीय-गालीगलौज ही। हाँ, यह निश्चय अवश्य किया गया कि कामरेडसाहब किसनूकी अध्यक्षतामें एक सभा हो जिसके प्रारंभमें इनकलाबी जुलूस निकाला जाय और अगर हो सके तो अंतमें भी।

पार्वतीने घीका लोटा वल्लभशास्त्रीजीके सामने रखा और प्रणाम करके अलग जा कर खडी हो गई। उधर श्रीमती वैद्यराज च्यवनप्राशका डिब्बा लेकर अकडती हुई इस तरह घरके अन्दर चली गई मानों वह घरवाली उनकी भी हो। शास्त्रीजीकी समझ मोटी न होनेके कारण भूमिका वे जल्दी ही समझ गए और मंत्र-विद्याके द्वारा वे मूलबातका पता लगाने ही वाले थे कि श्रीमती वैद्यराज आ धम्मसे उनके सामने बैठ गई। श्रीमती वैद्यराजने सादे शब्दोंमें मूलबात एकदम प्रकट की। सकपकाती-सी खडी पार्वतीकी ओर उन्होंने ध्यान ही नहीं दिया। शास्त्रीजीने पीढा पीछेकी ओर ज़ोरसे

सरकाया और घुटनोंके बल खडे हो गए। उनकी मुखमुद्रा गंभीर हो उठी और इतनी अधिक गंभीर हो उठी कि सकपकाती-सी खडी पार्वती सिसकनेको हुई। उन्होंने अपनी कोठरीनुमा तन्त्रशालाकी ओर देखते हुए दृढ-स्वरोंमें कहा—"गंगूका निशाना भी नहीं छोडूँगा। वह है किस फेरमें।" शास्त्रीजीने विस्फारित दृष्टिसे पार्वतीकी ओर देखा जो उस वक्त सचमुच सुबक रही थी। उन्होंने उसे इशारेसे पास बुलाया और आगे कहा—"आप निश्चिंत रहिए। मामला आपका ही नहीं, भद्रलोगोंका भी है, मेरा भी है। आवाहन अभिचार अभी होगा। वृक्षको आप सुरक्षित ही समझिए।" वे एकदम उठे और तंत्रशालामें घुस गए। किवाड करवट बदल कर निस्पन्द हो गए। सांकल झनझना कर शांत हो गई। पूरे दो घंटेके बाद पसीनेमें तरबतर हो वे बाहर आ गए और इस तरह उछल कर खडे हो गए मानों गंगूको अभी पछाड कर आए हों। उनके एक हाथमें ताम्बेका कवच था और दूसरेमें कुश-कायामें आवाहित गंगूकी धूर्त आत्मा। तंत्रसाधन दोनों उन्हें सौंपते हुए उन्होंने कहा कि वे एकको सरकारी नालेमें बहा दें और दूसरेको वृक्षकी उभरी जडसे बाँध दें। श्रीमती वैद्यराजने ये दोनों कार्य उसी दिन रातको ब्रह्म-मुहूर्तके पूर्व ही कर डाले। जब वे अपने घर पहुँचीं तो कौवे बोल रहे थे और वैद्यराज बांसका डंडा लिये उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

बन्दोबस्त सारा हो चुका था। भूमिका बंध चुकी थी। डंडे, लाठियाँ, ईंट, पत्थर, काष्ठखंड इत्यादिका ही नहीं उपयुक्त बरतन-भांडों और घरेलू उपकरणोंका भी संग्रह हो चुका था। दोनों ओरके संग्रहोंमें अद्‌भुत प्रकारकी समानता थी; हाँ, अन्य बातोंमें अंतर अवश्य था। बाबाजी अपनी धमकीको कार्यान्वित करने केलिए समय और स्थान निश्चित कर चुके थे। बुजुर्ग भक्तों और स्त्रियोंकी ओरसे दुर्गापाठका पूरा प्रबंध हो चुका था। कामरेड साहब किसनूने निमंत्रण स्वीकार ही नहीं किया था, बल्कि सभा प्रारंभ होनेके बहुत पहले आनेका वादा भी किया था और शंभु कुल्हाडी छुडवा चुका था। आंधीके पूर्वकी शांति थी। गंगू अपनी खुली दूकानके बरामदेमें उकडूँ बैठा बाहर बढते हुए अंधकारको देख रहा था और उसके भीतर घटाएँ घुमड रही थी। एकदम विद्युत-सी उसमें कौंध गई। उद्वेलित भावधारा दिग्‌भ्रान्त-सी हो गई। वह उठा, निकटस्थ स्तंभके चार चक्कर काटे और अपनेको टटोला। उसे विश्वास हुआ—वह वही है, और कोई नहीं है, बाबाजी बिल्कुल ही नहीं है। वह पुनः बैठ गया। उसने निश्चित होनेका श्रम किया; शांति की कल्पनाकी; परन्तु अंधडमें शांति कैसी? एकदम उसमें इतने अधिक संगत प्रश्न उभर आये कि उसका अंतर चिल्ला उठा—काश! यह पहले होता! इतनी बडी हिंसासे आखिर फायदा ही क्या? मुहब्बत और मारपीटमें व्यस्त भतीजेका क्या भरोसा? वर्ण,

वर्ग, विद्या, बुद्धि, विवेक, अर्थ इत्यादिकी असमानताओंका अंत क्या कभी हुआ है जो अब "जनता रेस्त्राँ"से होगा? अविवाहित और निर्मोही होनेके कारण 'रेस्त्राँ'का ही नहीं 'सलून'का भी यदि नाश हो जाय तो उसका क्या बिगडेगा? क्या बाबाजीसे वह कम अनासक्त है? वे दिन सचमुच कितने मादक थे जब वह शहरकी उन पुर्तगाली मेम साहबाके यहाँ महाराज था! जब वह कबाब बनाता था तो वे कितनी बडी ममतासे उसकी पीठ थपथपाया करती थीं! मत-भेद उसका उनके पतिसे ही था और तज्जन्य परिस्थितियोंमें ही वह भाग आया था और बाप-दादाका पेशा स्वीकार किया था! काश! उन मेम साहबाका कोई पति ही नहीं होता! चिंतनके भारी बोझसे उसकी ग्रीवा झुक गई; पथराई आंखें बन्द हो गईं और वह सिकुड कर कुछ इस ढंगसे बैठ गया मानों संज्ञा उसमें निश्शेष हो चुकी हो। आधी रातके वक्त गर्जन और गडगडाहट केसाथ मोटरकारनुमा एक गाडी सलूनके द्वारपर आ कर रुकी। वृक्षके दरारमें सुखासनपर बैठा कुत्ता भूँक उठा। ऊपर वृक्षपर बैठे पक्षी परेशान हो उडने लगे और 'साधनागृह'में मोर्चेकी तैयारीमें व्यस्त बाबाजी दुर्गाका ध्यान करके बाहर आ गए। गंगूकी आंखें खुलीं। देखा, वे ही मेम साहबा सामने गाडीसे सट कर खडी हैं। गाडी भी वही पुरानी, पिछली शताब्दीकी-सी। गंगूने सकपकाकर देखा और देखता ही रहा। मेम साहबाने इशारेसे उसे बुलाया और

अत्यधिक गंभीर हो कहा—"वह इब्राहिमकी औरत केसाथ भाग गया है; उससे अब मेरा कोई वास्ता नहीं है। तुम चलो, अभी चलो।" गंगू यंत्रचालित-सा उठा और गाडीमें मेम साहबाकी बगलमें बैठ गया मानों अब और किसीसे उसका भी कोई वास्ता नहीं हो। गाडी गडगडाहट केसाथ एकदम चल दी। दूसरे ही दिन प्रातःकालमें बाबाजीने वल्लभशास्त्री और श्रीमती वैद्यराजकी सहायतासे दुर्गाकी करामातका समाचार घर-घर पहुँचाया जिसके फलस्वरूप संध्याके वक्त 'साधनागृह'के प्रांगणमें महा संगोष्ठी हुई। गंगू फिर दिखाई नहीं दिया और न उसका कोई समाचार ही मिला। वृद्ध आम्र-वृक्ष व्यस्त वर्तमानपर व्यंग्य-सा अब भी वर्तमान है। ○

आचार्य

आचार्यजी शुद्ध और मुहावरेदार अंग्रेज़ीमें संस्कृत अध्यापन करते हैं और थोडी-सी संस्कृत वे जानते भी हैं। विश्वविद्यालयसे वेतनके रूपमें प्राप्त ८००) वे नियमित रूपसे बैंकमें जमा करते हैं और सार्वजनिक चंदेसे अपना गुज़ारा करते हैं। विश्वविद्यालयके उच्च पदाधिकारियोंसे ही नहीं बल्कि साधारणसे साधारण कर्मचारियोंसे भी वे दफ्तरमें नहीं मिलते, घरपर ही मिलते हैं। कोट, पतलून और विलायती टाईसे उनकी विशेष ममता है, हां, जब खद्दरधारी विशिष्ट नेताओंसे मिलना होता है तो वे अपना पुराना खद्दरका कुरता पहनना नहीं भूलते। वेतनभोगी अध्यापक होनेके कारण वे सक्रिय राजनीतिमें भाग नहीं लेते। परन्तु राजनीतिक विचारधाराओं और नेताओंके उत्थान, पतन, परिवर्तन आदिका अध्ययन अवश्य करते हैं। समाजके द्वारा आदृत व्यक्तियोंका वे भी आदर करते हैं और साथ ही उनके सम्पर्कमें आनेका यत्न भी करते है। अनवरत यत्न और अध्यवसायके फलस्वरूप उन्होंने

मिनिस्टर महोदयोंसे लेकर कम्यूनिस्ट जगन्नाथ तकके नेताओंकी मित्रता प्राप्तकर ली है । तीन सांस्कृतिक संघोंके वे कोषाध्यक्ष हैं जिससे जीविका चलानेमें उन्हें कोई विशेष कठिनाई नहीं होती । आर्यभाषाओंका अनुसंधान-कार्य कई वर्षोंसे वे करते आए हैं और उनके वयःप्राप्त सुपुत्रोंका कथन है कि यह कार्य प्रामाणिक, सुन्दर और सचमुच सराहनीय है । एटम-बम और विश्वशांतिसे लेकर ज्योतिष और च्यवनप्राश तकके समग्र विषयोंपर वे व्याख्यान देते हैं और उनका दृढ़ विश्वास है कि व्याख्यान सभी समान-रूपसे प्रभावोत्पादक हैं । हाल ही में उन्होंने कालिदासके काव्यसौष्ठवपर जो व्याख्यान दिया था वह इतना अधिक मार्मिक था कि श्रोता सभी बरबस रो पडे थे ।

अपने खद्दरके कुरतेमें आचार्यजी भले ही साठ सालके दीखते हो, किन्तु जब वे कोट पतलून और टाईसे सजे निकलते हैं तो उनकी अवस्था पैंतालीससे अधिक कदापि नहीं लगती । मक्खन-सा कोमल सिर, भानमतीका पिटारा-सा वैचित्र्यपूर्ण माथा, तनिक चपटी नाक, चौड़ी छाती, रोमावृत तोंद आचार्यजीका आकार सचमुच आकर्षक है । रेश्मी पतलून, पलेक्स शू, अविवाहित देशी मेमके आंचल-सी उच्छृंखल टाई-आचार्यजीका दावा है कि भद्र महिलाएँ उनकी ओर जबर्दस्त आकर्षित होती हैं ।

नये सालकी प्रारंभिक परेशानियां तीन दिनमें ही समाप्त हो चुकी थीं । यह चौथा दिन था । आचार्यजी

बहुत ही प्रसन्न और निश्चित थे। वेतन बैंकमें जमा हो चुका था। चन्देकी लिस्ट पूरी हो चुकी थी। कम्यूनिस्ट जगन्नाथको छोड बाकी सभी सदस्योंसे चंदा मिल चुका था। पानवालेको पैसा न देनेका निश्चय हो चुका था और दूधवाली बुढ़िया मर गई थी। किफायतका कार्यक्रम दिसम्बरमें ही बन चुका था और इस साल उसमें रियायतकी संभावना बिलकुल ही नहीं थी।

दोपहर ढल चुकी थी। आचार्यजी आराम कुर्सीपर लेटे बडी कोमलतासे अपना पेट सहला रहे थे। सामने ही उनका कंकालसदृश टाइपिस्ट उदास बैठा था। आचार्यजीको एकदम आस्पतालमें पडी अपनी रुग्ण माताकी याद आ गई जिनका पत्र कुछ दिन पूर्व उनको प्राप्त हो गया था। आचार्यजीकी आँखोंसे दो चार बड़ी बड़ी बूँदे नीचेकी ओर लुढ़क गईं। उन्होंने एकदम पत्र टाइप करवाया:—

"माताजी,

प्रणाम।

आपका पत्र पढ़कर मैं बरबस रो पडा हूँ। मेरे सहकारी अध्यापक इसके साक्षी हैं। आपके दवा-दारु तकका प्रबन्ध इस विपन्न पुत्रसे नहीं हो पा रहा है।

काश! मैं इतना विवश न होता!

—अभागा पुत्र"

आगे कौन हवाल ?

—डा० गोविन्दशेनाय

कथ्य और शिल्पकी दृष्टिसे 'आगे कौन हवाल ?' किसीका आभार नहीं मानता। व्यस्त वर्तमानकी चहल-पहल, बिखराव एवं अनास्थाकी ओर तटस्थ व निर्ममभावसे देखते हुए, आस्था तथा व्यक्तित्वकी भग-दौडमें औंधे-मुँह गिरपडनेवालोंकी तरफ व्यंग-भरी मुस्कान छोड़कर एकदम अपनेको गंभीरतामें परिवर्तित करनेवाले लेखकके व्यक्तित्वका धूप-छाँही रूप नितान्त मोहक है। करुणाकी गहराईमें डूबना या पाठकोंको डुबोना तथा सलाहकारका आसन ग्रहण करके अपनेको व्यंग-बाणका निशान बनाना लेखकका ईप्सित नहीं। वेदान्तको अनुपयोगी, किन्तु परिवार नियोजनको अनिवार्य समझनेवाले सरकारी-अफ़सर मुग्धावतीके मोहक शरीर तक सीमित मायावादमें उलझे प्रोफेसर, देशज गालियोंकी व्यंजक-शक्तिपर अनुभवके आधारपर विश्वास करनेवाला मणकू साहब, बिल्लीको सहलाते सहलाते जवानीको सरस बनानेवाला अविवाहित मिस्टिक साहब जैसे पात्र छोटी छोटी रेखाओंसे साकार होकर पाठकोंके दिलपर पल्थी मारकर बैठते हैं और पूछ उठते हैं—'आगे कौन हवाल ?'

केरल हिन्दी साहित्य मण्डल

एरनाकुलम, कोचिन-२५, केरल

Indic Digital Archive Foundation
gpura.org